पशुपालन का व्यवहारिक ज्ञान

डॉ. बी. एस. मीणा
डॉ. एस. एस. लठवाल
मधुलता सी.

भाकृअनुप-राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान
करनाल-132001, हरियाणा

प्रकाशक :- डॉ. धीर सिंह
निदेशक, राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल
मुद्रण :- नवम्बर 2022

आंकलन एवं सम्पादन :-

डॉ. बी. एस. मीणा
डॉ. एस. एस. लठवाल
मधुलता सी.

सर्वाधिकार सुरक्षित

इस पुस्तक का कोई भी भाग निदेशक, राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान की लिखित अनुमती बिना किसी भी माध्यम यथा ईलैक्ट्रोनिक, फोटो ग्राफी, रिकार्डिंग द्वारा पुनः उत्पादन एवं संचार तथा संग्रहण नहीं किया जाएगा।

विषय सूचि

क्र. सं.	विषय	पृष्ठ सं.
1.	डेरी पशुओं के लिए आवास की आवश्यकता	3
2.	नवजात बछड़े व बछड़ियों की देखभाल कैसे करें	13
3.	गायों एवं भैंसों की उत्कृष्ठ नस्लें तथा आनुवांशिक सुधार के लिये प्रजनन नीतियां	20
4.	गाय/भैंसों के उत्पादन पर गर्मी का प्रभाव एवं बचाव के उपाय	28
5.	दुधारू पशुओं के लिए आहार	31
6.	डेरी पशुओं की जनन समस्याऐं व बचाव	40
7.	डेरी पशुओं के पाचन तथा :वसन सम्बन्धी रोग एवं उनका उपचार	50
8.	पशुओं को 'साईलेज' खिलाना	57

पशुपालन का व्यवहारिक ज्ञान

परिचय

पशुपालन कृषि का एक महत्वपूर्ण घटक है और स्वतन्त्र भारत में तो पशु पालन विशेष रूप से प्रगति पथ पर बढ़ रहा है न केवल बड़े बल्कि छोटे और सीमान्त, भूमिहीन किसान एवं बेरोजगार युवक भी इस व्यवसाय को अपना रहे हैं। प्रगतिशील पशु पालक तो इस व्यवसाय को अपनाकर अपनी सुख, समृद्धि की बढ़ोत्तरी कर रहे है। पशुपालन के क्षेत्र में किये गये बहुमुखी प्रयासों के फलस्वरूप हमारा देश आज दुग्ध उत्पादन में विश्व में सबसे आगे है। दुधारू पशुपालन के इच्छुक पशुपालकों के लिए आवश्यक है कि उन्हें पशुपालन की मूलभूत बातों की जानकारी हो जैसे कि कौन-कौन सी नस्लें होती है? पशुओं की नस्लों का दुग्ध उत्पादन कितना। पशुओं का चयन कैसे करें? इनकी पहचान कैसे हो? आधुनिक एवं लाभकारी पशुपालन व्यवसाय के लिए यह भी आवश्यक है कि पशुपालकों को पशुओं के मद में आने, गर्भाधान निदान, गाभिन और बिना दूध वाले पशु प्रबन्धन, दूध देने वाले पशुओं की सुरक्षा एवं प्रबन्धन, नवजात बच्चों की देखभाल, पशु आवास और प्रबन्धन आदि महत्वपूर्ण पहलू है।

इसके अतिरिक्त फार्म-रिकार्ड, स्वच्छ दुग्ध उत्पादन, सम्पूर्ण पशु आहार, स्वास्थ्य आदि की जानकारी पूर्ण रूप से हो तभी एक पशुपालक कुशल प्रबन्धक की भांति अपने लक्ष्य में सफल हो सकता है। आधुनिक पद्धति पर आधारित दुधारू पशुपालन के सम्बंध में आवश्यक जानकारी प्रस्तुत की जा रही है।

खेती के साथ किये जाने वाले कार्यों में पशुपालन सबसे उत्तम, सुविधाजनक, सुरक्षित व सुनहरे भविष्य की और ले जाने वाला कार्य है बशर्ते कि इसको उन्नत तरीके से उपयुक्त तकनीकों व सुचारू पशु प्रबन्धन के साथ किया जाये। कुछ लोगों का मानना है कि पशु आहार व पशुओं की कीमतें महँगी है और मजदूरी भी बहुत महँगी होने से पशु पालन का कार्य लाभदायक नहीं है यह सिर्फ एक नकारात्मक सोच है। अगर उन्नत नस्ल के अच्छी दूध क्षमता के पशु रखे जाएं और उन्हें उपर्युक्त संतुलित आहार देने में अपने ही खेत में पैदा होनी वाली फसलों का बचा हुआ हिस्सा इस्तेमाल करके संतुलित आहार खिलाया जाए एवं साथ-साथ में पूर्णतया मजदूरी पर आधारित न रह कर स्वयं भी इस कार्य में अपनी व अपने परिवार के सदस्यों की सहभागिता बढ़ाई जाये तो इससे न सिर्फ प्रबन्धन अच्छा होगा बल्कि इसी कार्य में स्वावलम्बी बनना बहुत आसान होगा।

किसी भी कार्य को नियमित व सुचारू ढंग से करने की तथा कम समय में अधिक से अधिक लाभ प्राप्त करने के उद्देश्य से की गई कला को ही प्रबन्धन कहा जाता है। दुधारू पशु प्रबन्धन का तात्पर्य पशुओं के जीवन निर्वाह से होता है, जिसमें उसके जन्म से लेकर मृत्यु तक समुचित पालन-पोषण, आवास, स्वास्थय रक्षा एवं प्रबन्धन संबंधी क्रियाएं सम्मिलित होती है इस प्रकार दुधारू पशु प्रबन्धन एक बहुआयामी पद है।

जिसमें सभी क्रियाएं उच्चतम उतपादन के लिए शामिल है। दुधारू पशुओं की समुचित प्रबन्धन की जानकारी पशुपालकों को होनी चाहिए जिससे कि पशुपालक अपनी परिस्थितियों और आवश्यकतानुसार अधिक लाभ प्राप्त कर सकें। पशु को उचित समय पर गर्भाधान कराना सफल पशुपालक के लिए आवश्यक है। उचित समय पर गर्भाधान पशु प्रबन्धन के लिए आवश्यक है क्योंकि प्राकृतिक गर्भाधान पद्धति की अपेक्षा कृत्रिम गर्भाधान के अधिक लाभ है। दोहन प्रबन्धन दूध देने का समय गाभिन और सूखे पशुओं का प्रबन्धन पर्याप्त सूखा समय पूर्व गर्भाधान और पूर्ववर्ती दुग्ध स्त्रवण काल के तनाव को कम करने के लिए अति आवश्यक है। पशु ब्याँने की तैयारी दूध देने वाले पशुओ का प्रबन्धन नवजात बच्चों की देखभाल, आवास और सफाई प्रबन्धन, पशु आवास पशु को न केवल सुविधा प्रदान करने वाला हो बल्कि वहां पर दूध दोहन और सफाई प्रबन्धन के लिए पर्याप्त स्थान होना चाहिए।

फार्म रिकार्ड रखना अत्यंत महत्वपूर्ण है। बिना पूर्ण रिकार्ड के यह नही जाना जा सकता है कि पशुपालन का व्यवसाय कैसे चल रहा है? स्वच्छ दुग्ध उत्पादन प्रक्रिया में सभी स्थितियों में स्वच्छतापूर्वक दुग्ध का रखरखाव सम्मिलित है। पशुओं का नियमित परीक्षण आवश्यक है। जिससे कि पशुपालक आश्वस्त हो सके कि पशु रोगमुक्त है। अन्यथा रोगग्रस्त पशु मानव जाति को भी प्रभावित कर सकते हैं। रोग दूध के द्वारा मनुष्यों तक पहुँच सकते हैं। दूध वाला क्षेत्र मक्खी,रोडेन्ट, कृमि, धूल, धुआँ, खाद, गोबर, धूल कणों से रहित होना चाहिए। आहार और पोषण सम्पूर्ण करने के लिए चारा, दाना और तत्व जिससे कि प्रोटीन/ऊर्जा खनिज विटामिन आदि की आवयश्क मात्रा मिल सके।

1 डेरी पशुओं के लिए आवास की आवश्यकता

डेयरी पशुओं के लिए आवास व आश्रय का मुख्य उद्देश्य पशुओं के बेहतर विकास, बेहतर प्रजनन और उत्पादन के लिए अनुकूल वातावरण प्रदान करना हैं। डेयरी पशुओं के आवास की योजना और डिजाइन (बनावट/संरचना) बनाते समय पशुओं के बेहतर स्वास्थ्य और आरामदायक के साथ साथ श्रमिकों का डेयरी फार्म के विभिन्न कार्यों जैसे पशुओं कि खिलाई पिलाई, पशु व फार्म की सफाई और स्वच्छ दूध उत्पादन आदि में आर्थिक रूप से उपयोग हो। पशुओं के वेहतर कल्याण के लिए पशु आवास की योजना बनाते समय निम्नलिखित बिन्दूओं पर ध्यान देना चाहिए।

- सभी समूह/उम्र के पशुओं को पर्याप्त स्थान उपलब्ध हो।
- जल निकास के लिए फर्श में पर्याप्त ढलान हो।
- पशु आवास में पर्याप्त वेंटिलेशन (रोशनदान), प्रभावी तापमान और आद्रर्ता हो।
- पशुघर में पशु समूह के लिए क्षेत्र का निर्धारण पशुओं की आयु, श्रेणी तथा संख्या के आधार पर किया जाना चाहिए। पशु घर में पशु समूह 35-40 के बीच अच्छा माना जाता है तथा यह 50-60 से अधिक का नहीं होना चाहिए।
- जब पशुओं को एक समूह में खिलाया जाता हैं तो उनके लिए पर्याप्त स्थान हो ताकि पशुओं को चारे के प्रति अनुचित प्रतिस्पर्दा से बचाया जा सके।

पशु आवास के निर्माण के लिए मूल विचार

डेयरी पशुओं के आवास की कोई यूनिट (इकाई) स्थापित/निर्माण की योजना की परिकल्पना करने से पहले कुछ बुनियादी विचारों का ध्यान रखना चाहिए जैसे :-

1.डेरी फार्म के लिए स्थान का चुनाव (चयन)

एक नया डेयरी फार्म खोलने से पहले निम्नलिखित बिन्दूओं को ध्यान में रखना बहुत जरूरी हैं।

(क) डेरी फार्म बाजार/आवासीय क्षेत्र के निकट हो

प्रस्तावित डेयरी इकाई बाजार के पास हो तथा डेयरी इकाई की सभी युनिट और फार्म गाँव व शहर से सड़क द्वारा जुड़े हो ताकि परिवहन में आसानी हो। डेयरी फार्म पर दूध एक जल्दी खराब होने वाला पदार्थ (अवयव) हैं इसलिए इसे एक छोटे अंतराल (शीघ्र) में ठंडा करना चाहिए। दूसरा विकल्प यह है कि दूध को संग्रह केंद्र जहाँ दुग्ध शीतलन कि सुविधा हो पर भेजना चाहिए।

(ख) डेरी फार्म के लिए उचित जंगह का चुनाव

भूमि जहाँ पर पशुओं के रखने के लिए ईमारत (बाड़ा/पशुघर) बनाया जा रहा हैं वहाँ की भूमि उबड़ खाबड़ नहीं होनी चाहिए। यह देखा गया हैं कि जिस क्षेत्र की भूमि का जल स्तर ऊँचा हो और जल निकास की सुविधा अच्छी न हो वहाँ पर जल से सबंधित बीमारियां होने की सम्भावना होती है। एक समतल क्षेत्र भवन निर्माण तथा तैयारी में व्यय की लागत भी कम करती हैं।

(ग) बरसात के मौसम में जल निकास

भूमि पानी सोखने वाली तथा थोड़ी ढलान वाली होनी चाहिए ताकि वर्षा के पानी के साथ साथ मल मूत्र बह कर निकल सके तथा भवन और पशु बाड़ा साफ व सूखा रह सके।

(घ) स्थान का आकार व ढलान

पशुओं को रखने की जगह (बाड़ा अथवा पशुघर) पशुपालक के कुल पशु संख्या तथा भूमि की उपलब्धता पर निर्भर करता हैं। प्रस्तावित चयनित क्षेत्र पशुओं की संख्या के लिए पर्याप्त होना चाहिए। भूमि में कुछ ढलान हो ताकि मल मूत्र व बारिस का पानी बह के निकल सके।

(ण) सूर्य का प्रकाश और हवाओं से सुरक्षा

डेयरी फार्म की ईमारत ऐसी दिशा मे स्थापित करनी चाहिए जहाँ पर सूर्य का प्रकाश अधिकतम प्राप्त हो तथा ठंडी हवाओं से जानवरो को बचाया जा सके इसलिए अधिकतम सूर्य के प्रकाश तथा हवाओं से बचने के लिए पशुघर (ईमारत) पूर्व से पश्चिम की तरफ होना चाहिए। हवाओं से बचने के लिए फार्म की सीमाओं पर स्थानीय उपलब्ध छायादार पेड़-पौधे लगाने चाहिए जोकि न केवल पशुओं को हवाओं से सुरक्षा प्रदान करते है बल्कि पशुओं को प्राकृतिक छाया भी प्रदान करते हैं।

(च) मजदूर की उपलब्धता

डेरी फार्म के पास पर्याप्त मजदूर उपलब्ध होने चाहिए। फार्म की संरचना (बनावट) इस तरह की होनी चाहिए जिससे की नियोजित परिश्रम व्यर्थ न हो। सभी डेरी इकाई व इनकी गतिविधियां एक ही जगह केंद्रित होनी चाहिए। उदहारण के लिए यदि जानवर को आहार देना हैं और हरा चारा फार्म से दूर हैं तो सूखा चारा और दाना लेने में समय की बर्बादी होगी।

पशु आवास का प्रकार और प्रणालियां

डेरी पशुओं के लिए मुख्य रूप से दो प्रकार के आवास होते हैं, एक खुला आवास और दूसरा पारम्परिक बंद आवास। प्रत्येक आवास के अपने-अपने फायदे व नुकसान होते हैं। डेरी पशुओं के आवास के संदर्भ में अंतिम निर्णय क्षेत्र विशेष कि जलवायु के घटक जैसे कि हवा, तापमान, वर्षा इत्यादि के आधार पर लेना चाहिए।

1 खुला आवास (बाड़ा) प्रणाली

खुला (मुक्त) आवास के नामानुसार ही, पशुओं को दूध दोहन के आलावा घूमने, फिरने, चारा, पानी, आश्रय आदि की पूर्ण स्वतन्त्रता होती हैं। इसमें जानवरों को दूध दोहन के आलावा आमतौर पर 40 से 50 के समूह में दिन-रात खुला रखते हैं, परन्तु कुछ अन्य विशिष्ट प्रयोजनों के दौरान जैसे उपचार, प्रजनन आदि के दौरान जानवरों को बांधने की आवश्यकता होती हैं। इस प्रकर के आवास में नांद ढके हुए स्थान पर तथा पानी की होद खुले स्थान पर होनी चाहिए तथा ये दीवारे ईट की बनी होनी चाहिए। इस प्रणाली में बछड़ों, दुग्ध दोहन, प्रसव व सांड इत्यादि के लिए अलग-अलग ईमारत (बाड़ा) होना चाहिए। इस प्रकार के भवनों और निवेश को ध्यान में रखते हुए एक खुले आवास किसानों के लिए अच्छा साबित हो सकता हैं। इस प्रकार की आवास प्रणाली कम वर्षा वाले क्षेत्रों जैसे पंजाब, हरियाण, राजस्थान, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, गुजरात, मध्य प्रदेश और महाराष्ट्रा आदि क्षेत्रों के लिए आदर्श हैं।

अन्य स्थानो पर इस आवास प्रणाली में कुछ संसोधन कर अधिक बारिश से पशुओं को बचा सकते हैं। इस प्रकार के पशु आवास के निर्माण में कम लागत कि आवश्यकता होती हैं तथा कम समय में विस्तार किया जा सकता हैं। इस प्रणाली में पशुओं का प्रबंधन आसान और कुशलतापूर्वक किया जा सकता हैं। आग लगने का खतरा कमभी रहता है व स्वच्छ दूध उत्पदान में मदद करती हैं।

2 बंद आवास प्रणाली

पारंपरिक बंद आवास प्रणाली सर्दिओं के मौसम के दौरान अधिक से अधिक सुरक्षा प्रदान करता हैं परन्तु अनुपातिक लागत बहुत अधिक होती हैं। तथ्यों की बात करे तो खुले आवास प्रणाली पर अधिक विस्तृत अध्ययन नहीं किया गया हैं जिससे की इसकी श्रेष्टता का आकलन की जा सके। हलाकि भवनों और निवेश की लागत को देखते हुए खुले आवास प्रणाली अधिक वांछनीय हो सकती हैं। परन्तु यह प्रणाली भारत के सभी कृषि जलवायु क्षेत्रों के लिए पूरी तरह उपयुक्त नहीं हैं। भारत की जलवायु विभिन्न क्षेत्रों में भिन्न-भिन्न होती हैं, इसलिए पशुओं के आवास की योजना और तैयारी एक क्षेत्र विशेष की प्रचलित कृषि जलवायु की परस्थितियों को ध्यान में रखते हुए करनी चाहिए। विभिन्न कृषि परस्थितिओ व क्षेत्रों की जलवायु को ध्यान में रखते हुए खुले आवास प्रणाली में अगर कुछ खामियां हों तो जलवायु की आवश्यकता के अनुरूप संशोधित कर इसे उपयुक्त बना सकते हैं।

3 भारी वर्षा वाले क्षेत्र

व्यस्क जानवरों के लिए संशोधित खुला आवास प्रणाली एक सामान्य खुले आवास प्रणाली की तरह होती हैं परन्तु इस में बाड़ा एक तरफ से ढका आवास होता है जोकि पशुओं को बारिस के दौरान पर्याप्त सुखा क्षेत्र प्रदान करता हैं तथा तेज हवाओं से सुरक्षा प्रदान करता हैं। पशुओं के आराम करने कि जगह खुले बाड़े के

अपेक्षित कुछ ऊँची होनी चाहिए तथा इसे एक तरफ ईटों की दीवार से बंद कर देनी चाहिए जोकि वायुरोधक का काम करती हैं।

4 गर्म शुष्क क्षेत्र

गर्म शुष्क क्षेत्र के लिए खुला आवास प्रणाली की बनावट ऐसी होनी चाहिए जहाँ पर पशुओं के आराम करने का खुला हुए भाग के मध्य भाग में छायादार वृक्ष हो। यह पशुओं को अप्रत्यक्ष रूप से छाया प्रदान करेगा और प्रत्यक्ष रूप से जानवरों को सौर विकिरण तथा गर्म मौसम के दौरान पशुओं को धूप से भी बचायेगा। आराम करने कि जगह को सभी तरफ से खुला छोड़ देना चाहिए जिससे की शुद्ध हवा पशुओं को मिल सके।

5 सर्द/ठंढे प्रदेशों के लिए आवास

शीतोष्ण क्षेत्र में, पशु आवास का पारंपरिक बंद आवास प्रणाली के साथ खुला आवास प्रणाली भी आंशिक रूप से वांछनीय हैं। यह प्रणाली पशुओं को बर्फ बारी, वर्षा और तेज हवा आदि से पशुओं को बचती हैं। पारंपरिक बंद आवास प्रणाली की पूंछ से पूंछ प्रणाली में पशुओं को बांधने, दुग्ध दोहन आदि वयवस्था एक पूर्णतः छत और बंद दीवारो के अंदर होता हैं।

इसके अलावा डेरी पशुओं के आवास की संरचना बनाते समय निम्नलिखित पहलुओं पर भी ध्यान देना चाहिए

- **ढलान**

पशु आवास को साफ, शुष्क (सुखा) बनाये रखने के लिए पशु बाड़े में उचित ढलान होना जरूरी हैं। प्रभावी जल निकास के लिए खुले हुए पशु बाड़े में ढलान 1:60 के अनुपात में होना चाहिए। पशुओं के खड़े होने के स्थान पर यह ढलान 1:40 के अनुपात में होना चाहिए।

- **नाली**

नाली का ढलान 1:40 के अनुपात में होना चाहिए। बारिस के पानी की पूर्ण निकासी के लिए खुले बाड़े में नालियों उथली होनी चाहिए। एक प्रभावी जल निकास के लिए डेयरी फार्म की आम नालियों में पर्याप्त ढलान व चौड़ाई होनी चाहिए। डेयरी फार्म में खुली नालियाँ भूमिगत नालियों की तुलना में बेहतर होती है क्योकि भूमिगत नालियां आमतौर पर बंद (ब्लॉक) हो जाती हैं।

- **छत**

दुधारू गाय व भैस के बाड़े की छत दो संरचना में बनानी चाहिए जिसमें एक अलग छत बाड़े की छत की गैलरी के मध्य में होती हैं जोकि मिडरिब के दोनों ओर कम से कम 6 से 8 फीट तक ढकी रहती हैं तथा इसकी मध्य में से ऊचाई 16 से 18 फीट होती हैं व किनारों की ओर झुकी होनी चाहिए।

पशुओं के खड़े होने वाले स्थान पर अलग से छत होनी चाहिए तथा 1 फीट का गेप (जगह) होनी चाहिए ताकि बेहतर प्रकाश और हवा का आवागमन हो सके। छत की ऊचाई मिडरिब से 15 फीट तथा दोनों तरफ 12 फीट होनी चाहिए। छत खंभों पर भी खड़ी की जा सकती हैं जिसके लिए सीमेंट, लोहा के पाइप ताथा मजबूत लकड़ी के खंभे प्रयोग में ले सकते हैं। पशुशाला में पशुओं को गर्मी के मौसम के दौरान गर्मी के तनाव से बचाने के लिए धुंध वाले पंखे लगाना चाहिए। पशुओं को सर्दी के मौसम के दौरान ठंड के तनाव से बचाने के लिए तथा ठंडी हवा आदि को रोकने के उचित साधनों का उपयोग करना चाहिए। पशुओं के आरामदायक बिछावन के लिए पेड़ों के पत्ते, रबड़ मेट या धान की पुआल उपयोग में लेनी चाहिए।

बछड़े, बछड़ियों और शुष्क गाय व भैसों के शेड की छत न जलने वाले पदार्थ (एस्वेस्टस) की शीट की बनी होनी चाहिए तथा छत की ऊँचाई तल से 12 से 14 फीट होनी चाहिए। इन छतों की पिच दोनों तरफ से सामानांतर 12 से 18 डिग्री की होनी चाहिए। छत का बाहरी भाग खभों / दीवारों से कम से कम 50 सेमी तक बाहर निकली होनी चाहिए जिससे बरसात की बौछारें अन्दर बाड़े में न जाने पायें।

• फर्श

बछड़ों, बछड़ियों और दुधारू गाय व भैसों के शेड का फर्श आर सी सी, सीमेंट की पक्की टाइल्सों की बनाई जानी चाहिए। फर्श फिसलन रहित होनी चाहिए इसके लिए फर्श जब नम हो तो फर्श कि सतह पर उपयुक्त तार का जाल के साथ खाचे बनाकर खुर्दरा बनाना चाहिए ताकि जानवरों को फिसलन से बचाया जा सके। वयस्क गाय भैस के शेड में खाचे 15x15 सेमी. के और बछड़े के शेड में 10X10 सेमी. के खांचे बनाने चाहिए। पशुशाला की फर्श का ढलान नाली की तरफ 1:40 के अनुपात में होना चाहिए। बंद क्षेत्र के अंतिम किनारो पर यू आकार कि तथा 30 सेमी चौड़ी और 6 से 8 सेमी गहरी नाली बनानी चाहिए। नालियों का ढलान 1:100 के अनुपात में होना चाहिए जो कक्ष से होते हुऐ सेप्टिक टैक तक जाता हैं जिसकी लम्बाई, चौड़ाई, गहराई क्रमशः 5, 5 और 10 फीट होनी चाहिए। खुले क्षेत्र का आधे से एक तिहाई भाग में सभी पशुओं के लिए कच्चा या बालू का बिछावन होना चाहिए तथा बचे हुए आधे से एक तिहाई भाग में पक्की ईट की फर्श होनी चाहिए। भूसा भण्डार तथा चारा मशीन (चाप कटर) की फर्श पक्की ईटों की बनी होनी चाहिए तथा दाना पिसाई, दाना मिश्रण, दूध भण्डार के स्थान का फर्श आर सी सी की बनी होनी चाहिए। होद और नाँद (मैनजर) का क्षेत्र निचे दी गई सरणी में अंकित हैं।

तालिका-1: डेयरी पशुओं के लिए फर्श, नाँद और पानी के लिए स्थान की आवश्यकता

क्र सं	पशु	प्रति पशु फर्श का क्षेत्र (वर्ग मी.)		प्रति पशु नाँद का स्थान (सेमी)	प्रति पशु होद का स्थान (सेमी)	रखने का तरीका
		ढका क्षेत्र	खुला क्षेत्र			
1	युवा बछड़ा (8 सप्ताह से छोटे)	1	2	40-50	10-15	अकेला और 5 से कम के समूह में
2	वयस्क बछड़ा (8 सप्ताह से बड़े)	2	4	40-50	10-15	15 से कम का समूह
3	बछिया	2	4-5	45-60	30-45	25 से कम का समूह
4	वयस्क गाय	3.5	7	60-75	45-60	25 से कम का समूह
5	वयस्क भैस	4	8	60-75	60-75	25-30 से कम का समूह
6	ग्याबिन पशु	12	20-25	60-75	60-75	एक
7	सांड	12	120	60-75	60-75	एक
8	बैल	3.5	7	60-75	60-75	जोड़े में

दीवार

विभिन्न प्रकार के पशुओं का खुला और बंद क्षेत्र के चारों ओर ईटों की दीवार होनी चाहिए जिसकी ऊँचाई 5 फीट तथा मोटाई 22.5 सेमी की होनी चाहिए। नांद से लगते हुए दीवार कि ऊचाई 3 फीट होनी चाहिए ताकि खिलाई पिलाई आसानी से हो सके। दूधारू गायों व भैसों के लिए बाड़े की चौड़ाई 10 फीट होनी चाहिए जिस के बीच में एक दरवाजा होना चाहिए जो सड़क कि तरफ खुला हो तथा बछड़ों व बछड़ियों, दूध न देनी वाली गाय/भैसों के लिए बाड़े कि चौड़ाई 6 फीट होनी चाहिए। दरवाजे लोहे अथवा मजबूत लकड़ी के बने होने चाहिए। भूसा भण्ड़ारण कि ईमारत की दीवार की ऊचाई 20 फीट होनी चाहिए।

चारदीवारी/बाड़ और फाटक

चारदीवारी या बाड़ की सामग्री सस्ती व स्थानीय रूप से उपलब्ध होनी चाहिए। बछड़ा व वयस्क गाय भैसों के लिए बाहरी चारदीवारी की ऊचाई क्रमशः 1.2 और 1.5 मी. होनी चाहिए। चारदीवारी या तो ईट की या लोहे के तारों की बनी होनी चाहिए। चारदीवारी के बीच में फाटक उपयुक्त आकर का बना होना चाहिए जोकि डेरी

फार्म के आकर के अनुसार अलग अलग होता हैं। शेड से शेड को जोड़ने वाले फाटक तथा शेड से बाहर (सड़क) की तरफ खुलने वाले फाटक की चौड़ाई क्रमशः 1 से 1.2 मी. तथा 2.5 मी. होनी चाहिए। डेयरी फार्मों का मुख्य दरवाजा बड़े आकर का होना चाहिए जिसकी चौड़ाई 5.5 से 6 मी. का होना चाहिए।

आवास का उन्मुखीकरण

पशु आवास पशुओं को जलवायु के विभिन्न चर जैसे वर्षा, गर्मी, सर्दी, हवा, बर्फ आदि से जानवरों की सुरक्षा प्रदान करता हैं। इसलिए आवास का उन्मुखीकरण इस प्रकार होना चाहिए कि यह जानवरों को अधिकतम सुरक्षा प्रदान कर सके। तटीय क्षेत्रों, में हवाओं की दिशा के विपरीत पशु आवास की ईमारत बनानी चाहिए। नम क्षेत्रों में आवास (ईमारत) को पूर्व से पश्चिम की तरफ बनाना चाहिए ताकि सूरज की प्राकृतिक रोशनी (धूप) अधिक से अधिक उत्तरी भाग में तथा कम से कम धूप दक्षिण भाग में पड़े व अच्छा वेंटिलेशन का लाभ मिल सके तथा शुष्क क्षेत्रों में पशु आवास को उत्तर से दक्षिण में बनाना चाहिए।

सांड का बाड़ा

एक सांड के बाड़े में 12 से 15 वर्ग मीटर का छायादार विश्राम क्षेत्र तथा 20 से 30 वर्ग मीटर का व्ययाम क्षेत्र होना चाहिए। बाड़े की दीवारें मजबूत और कम से कम 1.5 मीटर ऊची होनी चाहिए। बाड़े का दरवाजा मजबूत होना चाहिए ताकि सांड उसे तोड़ न सके और दरवाजे में कम से कम बहार निकलने के लिए दो निकास होने चाहिए ताकि चरवाहा दूसरे निकास से निकल सके।

बछड़ों का बाड़ा

बछड़ों को अलग-अलग कर के पाला जा सकता है या पिजरे में भी पाला जा सकता हैं जिसकी फर्श लकड़ी की बनी हो। दो सप्ताह से कम उम्र के बछड़े के लिए बाड़े का आंतरिक आयाम (भीतरी स्थान) 1200×800 मिमी का होना चाहिए। 6 से 8 सप्ताह के बछड़े के लिए 1200×1000 मिमी और 6 से 14 सप्ताह की उम्र के बछड़े के लिए बाड़े का आकर 1500×1200 मिमी का होना चाहिए। बछड़ों के लिए रोजाना ताजा और साफ पानी उपलब्ध होना चाहिए। बछड़े के रूमेन को जल्दी से जल्दी प्रोत्साहित करने के लिए बछड़ों को अच्छी गुणवत्ता वाला चारा देना चाहिए।

नांद और पानी का होद

नाँद को बाड़े के बंद क्षेत्र में दीवार कि ओर तथा पानी के होद बाड़े के खुले क्षेत्र में बनाना चाहिए जोकि ईट व सीमेंट द्वारा बनी होनी चाहिए। नाद व पानी की होद की भीतरी सतह गोल व चिकनी तथा दीवार का ऊपरी भाग धनुषाकार में बनाना चाहिए। पानी की होद पर रेलिंग लगाना चाहिए ताकि पशु होद में घूस न सके तथा पानी को दूषित न कर सके।

तालिका-2: नाद व होद के लिए स्थान नीचे दी गई सारणी के अनुसार होना चाहिए

पशुओं का प्रकार	प्रति पशु नाँद का स्थान (सेमी)	प्रति पशु होद का स्थान (सेमी)	नाँद/होद का आकार (सेमी)		
			चौड़ाई	गहराई	भीतरी दिवारी की ऊँचाई
गाय/भैंस	60-75	6-7.5	60	40	50
बछड़ा	40-50	4-5	40	10	20

गाय/ भैंसों में दुग्धस्त्रावण काल कम क्यों ?

गाय/भैंस का दुग्धस्त्रवण काल इस बात पर अधिक निर्भर करता हैं कि ब्याने के कितने दिनों बाद वह दुबारा गाभिन हुई यानि सर्विस काल कितना लम्बा था। गाय/भैंस यदि ब्याने के तुरन्त बाद गाभिन हो गई तो उसका दुग्धस्त्रवण काल कम हो गया था और यदि देर से गाभिन हुई तो लम्बा हो गया था। इसका कारण दुग्धस्त्रवण काल और सर्विस काल में आनुवंशिक सम्बन्ध का बहुत अधिक होना पाया गया हैं। इसका तात्पर्य यह हैं कि यदि सर्विस काल एक दिन बढ़ता हैं तो उसी अनुपात से दुग्धस्त्रवण काल भी एक दिन बढ़ जायेगा। जिन गाय/भैंसों ने 305 दिन से कम दूध दिया उनमें सर्विस काल का औसत 90 दिन तथा 305 दिन से अधिक दूध दूने वाली गाय/भैंसों के सर्विस काल का औसत 203 दिन पाया गया। इस तथ्य का गहराई से विश्लेषण करने पर यह देखा गया कि जब भैंस का गर्भ (फीटस) 160 दिन का हो जाता हैं तब गाय/भैंस दूध सुखाना प्रारम्भ कर देती हैं। लगभग 160 दिन के बाद गर्भ की वृद्धि बढ़ जाती है और उनको पर्याप्त मात्रा में पोषण न मिलने के कारण भैंस दूध सुखा देती हैं। वैसे भी कोई जीवधारी प्राथमिकता के आधार पर पुनर्उत्पादन को दुग्ध उत्पादन की अपेक्षा वरीयता देता हैं। गाय/भैंसों में गाभिन होने की तिथि से दुग्ध स्त्रावण काल सूखने की तिथि तक 160 दिन का समय सभी ब्यांतों में स्थिर पाया गया। इस पर दुग्धस्त्रावण काल की तरह सभी वातावरणीय कारकों का प्रभाव देखा गया। संक्षिप्त में हम यह कह सकते हैं कि छोटे दुग्धस्त्रावण काल वाली भैंसों ने औसतन प्रति गाय/भैंस 140 कि.ग्रा. दूध कम दिया जिससे कृषक को लगभग 1400 रूप्ये प्रति गाय/भैंस का नुकसान उठाना पड़ा।

दूध देने की अवधि

दूध देने की अवधि को बडाने के कुछ उपाय निम्न प्रकार हैं:- किसान भाईयों को यह ध्यान रखना चाहिये कि जब भैंस का गर्भ 160 दिन का हो जाता है तब भैंस के कुछ निर्वाह खान-पान को 30 प्रतिशत बढ़ा देना चाहिए। यह 500 से 650 ग्राम खली से प्राप्त किया जा सकता हैं।

1 भैंसों को दूध उतारने के लिए ऑक्सीटोसिन का इन्जेक्शन नहीं लगाना चाहिए इससे स्त्रवण काल छोटा हो जाता है। दूध दुहने के समय हरा चारा तथा दाना दें, अयन तथा थनों को हाथ से सहलायें। इस क्रिया के द्वारा भैंस दूध उतार देगी जैसे की हमारे घरों में सदियों से किया जाता हैं।

2 भैंस को ब्याने के तीन महीने के बाद ही गर्भ धारण करायें जिससे इनका दुग्धस्त्रवण काल बढ़ जायेगा। अन्यथा अतिशीघ्र गाभिन कराने से स्त्रवण काल छोटा रह जायेगा।

3 भैंस को जहां तक हो सके जुलाई से अगस्त के महीनों में गाभिन करा देना चाहिए। इससे उनके गर्भ के विकास के लिए तथा स्तन्यस्त्रवण काल के सूखने पर हरे चारे की प्रचुर मात्रा मिल जायेगी जिससे स्त्रवण काल बढ़ जायेगा। भैंसों का गर्भ धारण अप्रैल से जून के माह में होने के कारण अगला दुग्धस्त्रवण काल भी लम्बा हो जायेगा। इस प्रकार गर्मी के दिनों में किसान भाईयों को अपने दूध की अच्छी कीमत मिल सकेगी।

पशुओं की छंटनी

डेरी व्यवसाय से अधिक लाभ उठाने के लिए कम उत्पादक पशुओं की छंटनी कर देनी चाहिए। जब नई बछड़ियां तैयार हो जाए तो अधिक पुरानी गायों/भैसों को हटा दें। उत्पादक तथा स्वस्थ पशुओं को ही रखें। 20-30 प्रतिशत पशुओं छंटनी हर वर्ष कर देनी चाहिए और इनके स्थान पर 20-30 प्रतिशत अच्छे पशु ले आने चाहिए।

दूध के संघटन को प्रभावित करने वाले तत्व

दूध में पर्याप्त मात्रा में संघटन अलग-अलग होते हैं। दूध में संघटक वही होते है परन्तु प्रतिशतता बदल सकती हैं। सामान्यताः दूध में वसा में काफी दैनिक परिवर्तन होता हैं, इसके बाद प्रोटीन, ए-1 तथा सुगर आते हैं। दूध के संघटन को प्रभावित करने वाले तत्व निम्नलिखित हैं।

1 जाति :- प्रत्येक जाति में विशिष्ट संघटकों वाला दूध उत्पन्न होता हैं।

2 नस्ल :- अधिकतम दूध उत्पादन करने वाली नस्लों की गायों के दूध में वसा की प्रतिशतता भिन्न होती हैं।

3 व्यक्तिकता :- प्रत्येक गाय

4 दोहन में समय अन्तराल :- अधिक समय अन्तराल से अधिक दुग्ध उत्पादन तथा भिन्न वसा परीक्षण होता हैं।

5 दोहन की सम्पूर्णता :- यदि गाय पूर्णतया संकरित है तो परीक्षण सामान्य हैं, अन्यथा यह सामान्यतः निकृष्ट हैं।

6 दोहन की बारम्बारता :- यद्यपि एक गाय एक दिन में दो, तीन या चार बार दुही जाती हैं इसका वसा परीक्षण पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

7 दोहन की अनियमितता :- दोहन के समय तथा अन्तराल के बार-बार परिवर्तन का परिणाम अच्छा नहीं होता।

8 दिन-प्रतिदिन का दोहन :- अलग गाय के दिन-प्रतिदिन का दोहन अलग-अलग हो सकता हैं।

9 रोग एवं असमान्य स्थिति :- ये दूध के संघटन को बदलने का कारण हैं खासकर जब दूध का उत्पादन कम होता हैं।

10 ब्यांत की स्थिति :- ब्याने के बाद दूध का प्रथम स्त्राव कोलोस्ट्रोम अपने संघटक तथा सामान्य गुणों में दूध से बहुत भिन्न होता हैं। कोलोस्ट्रोम से दूध परिवर्तन में कुछ दिन का समय लगता हैं।

11 आहार :- आहार के केवल अस्थायी प्रभाव पड़ता हैं।

12 आयु :- जैसे-जैसे गाय की आयु बढती जाती है दूध में वसा की प्रतिशतता धीरे-धीरे कम होती जाती हैं।

13 ब्याने के समय गाय की स्थिति :- यदि ब्याने के समय गाय अच्छी शारीरिक स्थिति में हैं तो उसके दूध उत्पादन में वसा की प्रतिशत अधिक होगी तथा यदि उसकी शारीरिक अवस्था खराब हैं तो दूध में वसा कम होगी।

14 उत्तेजना :- किसी भी कारणवश, उत्तेजना के समय के दौरान दूध के उत्पादन तथा संरचना दोनों अस्थायी अस्थिरता के उत्तरदायी हैं।

15 औषधियों तथा हार्मोन का उपयोगः- कुछ औषधियों से वसा प्रतिशत में अस्थायी परिवर्तन हो सकते हैं। हार्मोन के टीके अथवा आहार से दूध उत्पादन तथा वसा प्रतिशतता दोनों में वृद्धि हो सकती हैं।

2 नवजात बछड़े व बछड़ियों की देखभाल कैसे करें

"एक डेरी इकाई (डेरी यूनिट) का नाभिक बीज (न्यूक्लियस सीड) एक बछड़ा व बछड़ियों होती है"

डेरी उत्पादन व्यवसाय का भविष्य बेहतरीन उत्पादित बछड़े व बछड़ियों पर निर्भर होता है, क्योकि ये बछड़े व बछड़ियाँ भविष्य मे हार्ड से निकली गई अनूत्पादित पशुओं की जगह लेती हैं। पशुपालकों को यह नहीं भूलना चाहिए की आज की बछड़े व बछड़ियाँ कल की दुधारू गाय/भैंस एवं सांड हैं। पर अक्सर यह देखा गया है कि पशुपालक जन्म के बाद गाय/भैस के बच्चों पर विशेष ध्यान नहीं देते हैं। विभिन्न शोध व सर्वेक्षणों से यह पाया गया है कि हमारे देश के ग्रामीण क्षेत्रों में पशुओं के लगभग एक तिहाई बच्चे की मृत्यु जन्म से एक वर्ष के भीतर और एक वर्ष की आयु तक हुई कुल मृत्यु मे से 75 प्रतिशत मृत्यु जन्म के एक माह के अन्दर ही हो जाती है जिसका मुख्य कारण पशुपालकों द्वारा पशु के प्रसव से पहले, प्रसव के दौरान व जन्म के उपरांत बच्चों के उचित रख रखाव, पोषण व स्वास्थ्य पर पूरा ध्यान नहीं देना माना जा सकता है, जबकि नवजात बछड़े व बछड़ियों की देखभाल उनके जन्म से पूर्व ही आरम्भ हो जाती हैं।

अतः नवजात पशु-प्रबंधन, पोषण व स्वास्थ्य से सम्बंधित कुछ महत्वपूण दिशा निर्देशों को सुचारू रूप से किर्यानविंत करने से डेरी व्यवसाय से जुड़े पशुपालक अपने नवजात बच्चों को बहुत हद तक मृत्यु के मुँह से बचा सकते हैं।

प्रसव से पूर्व एवं प्रसव के दौरान रख-रखाव :-

- बछड़े व बछड़ियों के उचित पोषण एवं विकास के लिए ग्याभिन पशु को ब्याने से 2.3 महीने पहले से ही 1.5 से 2 किलो ग्राम दाने का मिश्रण देना चाहिए, ताकि कम शारीरिक भार के बच्चे पैदा नहीं होवें और प्रसव सम्बन्धी समस्याएँ जैसे जेर का देर से गिरना या नही गिरना, किटोसिस, उर्जा की हानि, दुग्ध उत्पादन मे कमी आदि नहीं होवें तथा ग्याभिन पशुओं के स्वास्थ्य भी ठीक रहे और ब्याने के बाद दूध का उत्पादन भी अधिक हो।
- जिन ग्याभिन पशुओं के ब्याने का समय नजदीक हो उन्हें बाड़े से अलग, ब्याने वाले कक्ष में अथवा अलग स्थान पर रखना चाहिए।
- ब्याने के लक्षण प्रदर्शित करने के पश्चात् यदि पशु 4 घंटे या उससे अधिक समय से प्रसव के लिए जोर लगा रहा है और अंततः जोर लगाना बंद कर दिया हो तो तुरंत कुशल पशुचिकित्सक की सहायता लेनी चाहिए।
- ब्याते समय पशु को दूर से देखना चाहिए, ताकि पशु किसी प्रकार की बाधा महसूस नहीं करे और उसका प्रसव बैठे रहने की स्थिति मे हो, जिससे बच्चे को चोट लगने की सम्भावना कम हो जाती है यदि आवश्यकता हो तो पशु को ब्याते समय मदद करनी चाहिए ।

जन्म के बाद देख-भाल

बछड़े के जन्म के तुरंत बाद उसकी नाक और मुँह से श्लेष्मा झिल्ली हटा देना चाहिए, ताकि बच्चा अच्छी तरह से साँस ले सके।

- यदि श्लेष्मा नाक के अन्दर हो तो बच्चे के पिछले पैरों को पकड़ कर उल्टा लटका देना चाहिए ताकि श्लेष्मा निकल जाये।
- यदि बच्चा सांस नहीं ले रहा हो तो उसकी छाती को दोनों हाथों से दबाना-छोड़ना–फिर दबाना चाहिए या नाक मे सिंक डालकर हिलाना चाहिए ताकि बच्चे को छींक आ जाये। इसके पश्चात् बच्चे को माँ के पास छोड़ देना चाहिए। माँ बच्चे के शरीर पर लकी श्लेष्मा को चाट चाट कर साफ कर देती है। यह प्रक्रिया माँ बच्चे के बिच एक महत्वपूण बन्ध पैदा करती है जिसे हम मातृव बन्ध कहते है जोकि बच्चे के सम्पूर्ण विकास के लिए आवश्यक होता है।
- यदि किसी कारणवश माँ बच्चे को नहीं चाटती है तो बच्चे को साफ सूती कपड़े, बोरी या टाट के टुकड़े अथवा सूखे घास फूंस जैसे पुआल, तुड़ी इत्यादि से अच्छी तरह से रगड़ कर साफ कर देना चाहिए।
- चाटने व कपड़े से साफ करने से बच्चे के शरीर का रक्त संचार एवं श्वसन क्रिया रूप से चलने लगते हैं।

जन्म के बाद नवजात बछड़े व बछड़ियों का पोषण

- डेरी व्यवसाय का भविष्य बेहतर उत्पादित व स्वस्थ बछड़े व बछड़ियों पर निर्भर होते है क्योकि आज की बछड़ियाँ कल की गाय/ भैस हैं। डेरी व्यवसाय की सफलता, बछड़ा व बछड़ियों के उचित प्रबंधन व पोषण पर निर्भर करती हैं। बछड़ा व बछड़ियों के स्वास्थ्य व पोषण के लिए उनकी माँ का पहला गाड़ा, पीला व स्तन ग्रंथियों का पहला स्राव जिसे खीस कहते है अति आवशयक है।

खीस कब व कितना पिलाना चाहिए ?

- जन्म के आधे से एक घंटे के भीतर नवजात बच्चों को उसके भार के दसवे भाग की दर से लगभग 2.3 किलोग्राम खीस दिन मे 2.3 बार पिलाना चाहिए क्योकि खीस मे रोगों से लड़ने के लिए प्रतिरोधक तत्व (इम्मुनोग्लोबिलिंस/ एंटीब,डी) होते है जोकि बच्चों को बिभिन्न रोगों से बचाते हैं। साथ ही यह अत्यधिक पोषक तत्वों से भी भरपूर होता हैं।

खीस जन्म के आधे से एक घंटे के भीतर ही क्यों पिलाना चाहिए ?

- क्योकि गर्भवस्था के दौरान, ये एंटीब, डी (इम्मुनिग्लोबुलिंस) माँ से बच्चे में स्थानातरित नहीं हो पाती क्योकि गाय/ भैसों की जेर (प्लेसेंटा) इन एंटीब, डी को बच्चे के शरीर में पास नहीं होने देता है इसलिए नवजात बछड़े पूरी तरह से खीस पर निर्भर रहते हैं।

- जन्म के समय नवजात बछड़े व बछड़ियों की आंत अपरिपक्व होती है और जन्म के आधे से एक घंटे के भीतर पाचक एन्जयमों का स्राव भी कम होता है जिसके कारण खीस मे पाई जाने वाली एंटी बॉडी को अधिक मात्रा मे अवशोषित करने की क्षमता रखती हैं।
- खीस देरी से पिलाने पर उनकी आतें एंटीबोडिज को अवशोषित करने की क्षमता खो देती है इसके अलावा पाचन एन्जयमों का स्राव भी अधिक हो जाता है जिसके कारण एंटीबॉडी पूरी तरह से अवशोषित नहीं हो पाती हैं।
- खीस एक तरल सोने के नाम से भी जाना जाता है क्योकि इसमे मातृत एंटीबॉडी तत्व होता है जो कि नवजात शिशु की विभिन्न रोगों से रक्षा करती हैं।
- खीस रेचक (दस्तावर) प्रवर्ती का होता है जिसके पिलाने से आहार नल मे जमा मल (जोकि माँ के गर्भ के समय बच्चे के पेट मे जमा हो जाता है) जल्दी ही बहार निकल जाता है जिसे हम प्रथम मल या मेकोनियम कहते हैं।
- सामान्यतः यह पिलाने के 3.4 घंटे के अन्दर बहार आ जाता है यदि किसी कारणवश बहार नहीं आये तो बछड़े को एक चम्मच अरण्डी का तेल पिलाना चाहिए।

खीस की अनुपलब्धता की स्थिति मे क्या करें ?

- ऐसी परिस्थितियों मे बाड़े में लगभग उन्ही दिनों ब्याही गई दूसरी गाय/ भैंस का खीस अथवा कृत्रिम खीस बनाकर बच्चे को पिलाना चाहिए।
- कृत्रिम खीस बनाने के लिए एक ताजा अंडा, 750 मि.ली. उबले दूध मे घोलकर उसमे 5 मि.ली. कांड लीवर तेल, 10 मि.ली. अरण्डी का तेल डालकर अच्छी प्रकार मिला लेना चाहिए।

दूध व चारा–दाना कितना पिलाना/ खिलाना चाहिए ?

- अगर बच्चे को माँ के साथ रखा जा रहा है तो इसके लिए यदि गाय/ भैंस प्रति दिन 10.12 लीटर दूध देती है हो उसका एक थन बच्चे को पीने के लिए छोड़ देना चाहिए।
- यदि पशु का दूध प्रति दिन दूध उत्पादन 6.8 लीटर हो तो एक पूरा व एक आधा थन और यदि 3.4 लीटर होतो दो थन छोड़ना चाहिए जिससे बछड़े का उचित विकास हो सके।
- यदि नवजात बच्चे को जन्म के पश्चात् माँ से अलग रखने की व्यवस्था हो तो उस स्थिति में एक माह की अवस्था तक बछड़े को प्रतिदिन 2.5.3 लीटर दूध को दो भागों मे बाँट कर दूध की आधी मात्रा सुबह एवं आधी मात्रा शाम को बोतल या खुले बर्तन विधि द्वारा पिलानी चाहिए।
- दूसरे माह मे 2 लीटर और तीसरे माह मे एक लीटर दूध बछड़े के शरीर के तापमान तक गर्म करके पिलाना चाहिए।

नाभि नाल को काटना

- जन्म के बाद नवजात बच्चे की नाभि पर ध्यान देना बहुत ही आवश्यक है क्योंकि अधिकांश रोग नाभि के माध्यम से ही शरीर मे प्रवेश करते है जोकि एक गंभीर परेशानी का कारन बन सकती है। यहाँ तक की बच्चे की मृत्यु भी हो सकती है इसलिए इससे बचने के लिए जन्म के बाद बछड़े की नाभि नाल को साफ करके नाल को शरीर से 2.5 सेंमी की दूरी पर साफ धागे से गांठ बांध देनी चाहिए और बांधे हुऐ स्थान से 1 सेंमी नीचे से साफ व जीवाणु रहित ब्लेड या कैंची से काट कर टिन्चर आयोड़ीन का घोल अथवा अन्य एंटिबायोटिक लगाना चाहिए।
- यदि नाभि में संक्रमण की शुरूआत हो तो घाव पर इंडियन हर्बल द्वारा निर्मित स्किनहील स्प्रे को अच्छी प्रकार लगाये तथा रोजाना कम से कम दो बार घाव के ठीक होने तक स्प्रे करना चाहिए।

चारा/ दाना

- जब बछड़ा 15–20 दिन की उम्र का हो जाये उसे थोड़ी–थोड़ी मात्रा में दाने का मिश्रण देना चाहिए।
- दूसरे महीने मे 100–150 ग्राम प्रति बछड़ा एवं तीसरे माह मे 250-300 ग्राम प्रति बछड़ा तक बड़ा देना चाहिए।
- साथ ही 1.5 से 2 माह का हो जाने पर बछड़े को स्वच्छ हरा एवं पत्तीदार चारा भी खिलाना शुरू कर देना चाहिए ताकि उसके पेट का शीघ्र विकास हो सके।

सींग रोधन (सींग हटाना)

बड़े पशुओं मे सींग काटने की क्रिया को सींग रोधन कहते है परन्तु बछड़े की शुरूआती उम्र मे एक दो सप्ताह के अन्दर ही या फिर बछड़े की सींग कलिकाएँ उगने लगे इस अवस्था में सींग कलिकाओं को नष्ट कर देने की क्रिया को ही कलिका रोधन कहते है इस क्रिया मे रक्त स्राव बिलकुल नहीं होता है अगर सींग हटाने की क्रिया 30 दिन के बाद की जाती है तो इसे सींग रोधन कहते है इस क्रिया मे ज्यादा रक्त स्राव होता हैं।

सींग रोधन के लाभ :-

- सींग रहित पशु आपस मे लड़ाई कम करते हैं।
- सींग रहित पशुओं को काबू मे करने मे आसानी रहती हैं।
- पशु पशुपालक व अन्य पशुओं को चोट नहीं पहुचां सकता हैं।

सींग रोधन से हानियाँ :-

- कुछ नस्लों के पशु जैसे कांकरेज, मुर्रा आदि को उनके सींगो से पहचाना जाता है अतः सींग रोधन से उनकी पहचान मुष्किल हो सकती हैं।
- पशुओं के सींग होना उनका एक आभूषण है अतः सींग हटाने पर वे भधे दिखाई देगें।

नवजात बछड़ों में होने वाले रोग

नवजात बछड़ों के जन्म बाद उनके शरीर में रोग प्रतिरोधक क्षमता नहीं होती है और उनमें किसी भी प्रकार के रोग होने की संभावना होती है, क्योंकि बच्चों के गर्भ के समय इम्मुनोग्लोबुलिन (एंटीबॉडी) माँ से बच्चे में प्लेसेंटा (जेर) के द्वारा स्थानांतरित नहीं हो पाती, इसलिए जन्म के बाद बच्चे पूरी तरह से माँ के पहले **गाड़े** व पीले दूध जिसे हम खीस कहते है पर ही निर्भर रहते हैं। क्योकि माँ का पहला **गाड़ा** पीला दूध पोषक तत्वों से भरपूर व रोगों से **लड़ने** की क्षमता (इम्मुनोग्लोबुलिन एंटीबॉडी) रखता हैं।

नवजात बछड़ों में होने वाले रोगों में मुख्यतः निमोनिया, सफेद दस्त, नाभिका सड़न, आफरा एवं अन्तः व बाह्य परजीवी आदि प्रमुख हैं। इन रोगों का समय पर उचित उपचार नहीं किया जाये तो प्रायः बच्चों की मृत्यु हो सकती हैं। नवजात बछड़ों के रोगों में से कुछ रोगों के कारण एवं उनसे बचाव व उपाय निम्नलिखित अनुसार है :-

नाभि सड़न (नवल इल) :- यह रोग हाल ही में पैदा हुए बच्चों में उचित देखभाल न करने के कारण होता हैं। नाभि के चारो ओर सुजन आ जाती है एवं अधिक सूजन आ जाने के कारण बच्चे दूध नहीं पी पाते हैं।

बचाव व रोकथाम :- बछड़ा पैदा होने का स्थान साफ होना चहिए। जन्म के बाद बच्चे की नाभि को साफ करके एक साफ व जीवाणु रहित कैंची या ब्लेड से कार्टे।

उपचार :- यदि मवाद व घाव बहुत अधिक होता हो, तो पशु चिकित्सक की तुरन्त सलाह लें और आवश्यक इलाज करायें।

निमोनिया :- यह रोग प्रायः मौसम में अचानक परिवर्तन के कारण होता है जैसे ठंड एवं गर्मी या गन्दे व नमी युक्त स्थान पर रहने पर होता हैं।

लक्षण :- इस रोग में बच्चे ठंड महसूस करते हैं और बुखार भी आ जाता हैं। बच्चा खासने लगता हैं।

बचाव :- सर्दी एवं बरसात के मौसम में बच्चों को साफ सुथरे कमरे में जिसमें नमी न हो और हवा के सीधे झोके न आते हो, बच्चों को जूट के बोरे या मोटे कपड़े ओडाकर रखना चाहिए।

उपचार :- अधिक खराब स्थिति में पास के पशुचिकित्सक से सलाह लेकर तुरंत इलाज करायें।

दस्त (सफेद दस्त) :- यह रोग 2 से 5 दिन की उम्र वाले बच्चों मे कोली फॉर्म समूह के जीवाणुओं के संक्रमण के कारण होता है प्रायः यह सही समय पर खीस नहीं पिलाये जाने पर होता हैं। इस रोग के आरम्भ में तेज पतले दस्त, मल का रंग हल्का पीला या सफेद झागदार एवं दुर्गन्ध युक्त होता हैं। तेज बुखार आ जाता हैं। कभी-कभी दस्तों के साथ खून भी आता है और बच्चा कमजोर व आँखे अन्दर की ओर दबने लगती हैं।

बचाव :- बच्चों को पर्याप्त मात्रा में खीस पिलाएं। खीस पिलाने से पहले बर्तनों व पशुओं के थनो को अच्छी तरह साफ कर ले। खीस की मात्रा कम व ज्यादा नहीं होनी चाहिए। नवजात बच्चों को सूखे, साफ सुथरे व हवादार स्थान पर रखना चाहिए। दस्त होने पर बछड़े को चावल के मांड मे नेबलोन पाउडर मिलकर पिलाना

चाहिए यदि प्राय दस्त या अतिसार हो तो बछड़े को दूध में 80 मिली ग्राम ओरियोमाइसिन मिलाकर पिलाना चाहिए।

उपचार :- रोग का पता लगने पर दो तीन दिन खीस व दूध की मात्रा कम कर देनी चाहिए। अधिक होने पर पशु चिकित्सक की सलाह लें।

आफरा :- इसमें बच्चे के पेट में गैस बनती है उसका पेट फूल जाता हैं।

बचाव :- इससे बचने के लिए हरे चारे के साथ-साथ थोड़ा भूसा मिलाकर खिलाना चाहिए। सुबह जल्दी नहीं खिलाना चाहिए, क्योकि चारा ओस में भीगा होता है इसलिए थोडा सूखा कर खिलाना चाहिए।

उपचार :- इस रोग के उपचार के लिए टिम्पोल नामक औषधि का प्रयोग करना चाहिए। नजदीकी पशु चिकित्सक की सलाह लेनी चाहिए।

अन्त परजीवी :- दूध पिने वाले बछड़ों के पेट में अन्तः परजीवी जैसेः- गोलेंमि आदि का प्रकोप देखने को मिलता हैं। बच्चों को यह गंदे पानी तथा दूषित चारे से होता हैं।

लक्षण :- बछडा सुस्त रहता है, शरीर भार में गिरावट आती हैं। दस्तों का लगना व आँखों में चिपचिपा आना आदि इसके लक्षण हैं।

बचाव :- बछड़ों व बछड़ियों को साफ पानी व साफ चारा देना चाहिए ताकि कोई परजीवी इसके माध्यम से इसके पेट में न पहुचें। सभी प्रकार के अन्तः परजीवियों को नष्ट करने के लिए एलबेन्डाजोल 150 मिली ग्राम की एक गोली प्रत्येक बछड़े को 10 दिन की उम्र में देनी चाहिए।

बाह्य परजीवी :- बाह्य परजीवी जैसेः- जू, चिचड़ी आदि बच्चों के शरीर पर चिपके रहते है और खून चूसते है।

लक्षण :- इससे बच्चों के शरीर में खून की कमी हो जाती हैं। बच्चों के बाल झड़ने लगते है तथा खुजली पैदा हो जाती हैं। बच्चों की विकास रूक जाता हैं।

बचाव :- बच्चों के शरीर पर कीटनाशक दवाओं का प्रयोग करना चाहिए। बछड़ों के रहने के स्थान पर व पीने वाले पानी के होद के दीवारों की चुने से पुताई करनी चाहिए। बच्चे के कमरे में यदि कोई दरार या गड्ढे हो तो उन्हें भर देना चाहिए।

उपचार :- बाह्य परजीवी से ग्रसित बच्चों पर कीटनाशक दवाई लगानी चाहिए जैसे बुटैक्स २–३ एम.एल. लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करना चाहिए।

इनके आतिरिक्त नवजात बच्चों को बिमारियों से बचाव के लिये निम्नलिखित दवाईयों का प्रयोग करना चाहिए :-

बछड़े व बछड़ियों को बिमारियों **से बचने के लिए दवाई तालिका**

प्रथम दिन	टैट्रा साइकिल्पिन पाउडर	2 छोटे चम्मच	दस्त को रोकने के लिए
तीसरे दिन	पिपराजिन एडिपेट	8-10 ग्राम	ग्राम पेट में कीड़े मरने के लिए
सातवें दिन	विटामिन-ए	1- 4 ग्राम	ताकत के लिए
आठवें दिन	सलमेट	30 मि. लि.	काक्सीडिओसिस के लिए
नोवे दिन	सलमेट	30 मि. लि.	काक्सीडिओसिस के लिए
दसवें दिन	सलमेट	15 मि. लि.	काक्सीडिओसिस के लिए
ग्यारहवे दिन	सलमेट	15 मि. लि.	काक्सीडिओसिस के लिए

सर्दी के मौसम में बछड़े-बछड़ियो की देखभाल

सर्दी के मौसन में पशुओं को खासकर बछड़े-बछड़िया (कटड़े-कटड़ियों) को ठंड लगने से हर तरह का बचाव करना आवश्यक हैं। तेज बर्फीली हवा, धुंध तथा कड़ाके की सर्दी में छोटे बच्चों को निमोनिया आदि बीमारियाँ हो जाती हैं। इसलिए इनके आवास के खुले भाग में रात के समय बोरी, तिरपाल या कम से कम ज्वर-बाजरे के डांठलों का टटा (टाट) बनाकर टांगना चाहिए ताकि घर के अन्दर बंधे पशुओं के बच्चों को सीधी ठंड़ी हवा से बचाया जा सके। बच्चों के आवास का फर्श सोख होना चाहिए ताकि रात्रि में सीधी ठंड बच्चों को न लगे और फर्श पर गेहू का भूसा या चावल की पूआल डालकर भी सर्दी कम कर सकते हैं। पशुओं को अधिक ठंडा या गर्म पानी पिलाना चाहिए। दिन के समय बच्चों को धूप में बंधना चाहिए ताकि बच्चे धूप से गरमाहट मिल सके। बच्चों के आवास के पर्दों को दिन के समय हटा दे तथा गिले बिछावन को हटाकर साफ कर दे ताकि रोशनी व हवा का आवागमन हो सके व आवास स्वच्छ व सूखी हो सके तथा शाम को सूर्यास्त के बाद बच्चों को घर के अन्दर में बांध देना चाहिए।

इसके आतिरिक्त नवजात बच्चों को सूखे, साफ सुथरे व धूप वाले स्थान पर रखना चाहिए साथ ही दूध साफ बर्तन एवं उचित मात्रा में बराबर अंतराल पर पिलाना चाहिए। अतः पशुपालकों को यह ध्यान रखना चाहिए की आज के नवजात बछड़े व बछडियाँ भविष्य की दुधारू गाय/ भैंस व सांड होते है इसलिए उनकी उचित देखभाल, पोषण व प्रबंधन करना चाहिएं। अतः पशुपालकों को यह ध्यान रखना चाहिए कि एक डेरी ईकाई (डेरी यूनिट) का नाभिक (न्यूक्लियस सीड) बीज एक बछड़ा/ बछड़ी होती हैं।

3 गायों एवं भैंसों की उत्कृष्ठ नस्लें तथा आनुवांशिक सुधार के लिये प्रजनन नीतियां

भारत में गायों की 34 जानी पहचानी वर्णित नस्लें है। अखिल भारतीय पशु गणना 2007 के अनुसार भारत में गायों की कुल संख्या 19.9 करोड़ है, इनमें से लगभग 6.97 करोड़ गाएं 35 प्रतिशत प्रजनन योग्य एवं 4. 14 करोड़ गाएं 20.8 प्रतिशत दूध में हैं। गायों की डेरी नस्लें (साहीवाल, लाल सिन्धी, गीर, राठी एवं द्विउदेशीय दुग्ध एवं कृषि कार्यों के लिये उपयुक्त नस्लें) (हरियाणा, कान्क्रेज, ओन्गोल, देवनी, थारपारकर) ही दुग्ध उत्पादन के लिए भारत में प्रयोग की जाती है। कुछ संश्लेषित नस्लें, जो विदेशी नस्लों से संकरण द्वारा उत्पन्न की गई है यथा कर्ण फ्रिज, क्रर्ण स्विस, फ्रीजवाल, सुनन्दिनी आदि भी अधिक दुग्ध उत्पादन के लिये प्रसिद्ध है।

गायों की मुख्य नस्लें

साहीवाल :– यह दुग्ध उत्पादन के लिये एक उत्तम नस्ल है। इस नस्ल का उद्गम पाकिस्तान के मोंटगोमरी जिले में हुआ। भारत में यह नस्ल पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, छतीसगढ़ व मध्यप्रदेश में पायी जाती है। इस नस्ल का दुग्ध उत्पादन 1800 किलो प्रति ग्राम ब्यॉत के लगभग है। अच्छी गायों का दुग्ध उत्पादन 3000 किलोग्राम से अधिक पाया गया है। प्रथम ब्यांत औसत आयु लगभग 36 मास (29 से 52 माह) तक ब्यांत अन्तराल 415 दिन व शुष्क अवधि (दूध न देने की अवधि) 156 दिन औसतन पाई गई है। दुग्ध में वसा औसतन 5.0 प्रतिशत एवम् एस.एन.एफ. प्रतिशत 9.2 पाई जाती है। गले में विकसित झालर इस गाय की विशेष पहचान है।

लाल सिन्धी :– साहीवाल से मिलती-जुलती इस नस्ल का उद्गम भी पाकिस्तान में कराची, हैदराबाद सिन्ध है। भारत में इस नस्ल की गायें आसाम, झारखंड, उड़ीसा, उत्तरप्रदेश, उत्तराखंड एवं कर्नाटक में कम संख्या में मिलती है।

इस नस्ल का प्रति ब्यांत दुग्ध उत्पादन 1500-2000 किलोग्राम के बीच पाया जाता है। प्रथम ब्यांत आयु 32-50 मास, ब्यांत अन्तराल 425-540 दिन, ब्यांत से गर्भधारण के बीच का अन्तराल (सेवाकाल) 105-210 दिन स सूखा अवधि 112-179 दिन तक पाई गई है।

गीर :– इस नस्ल के पशु गुजराज के जिला अमरेली के जूनागढ़, भावनगर स्थान के पास व राजस्थान व मध्यप्रदेश से लगी सीमा पर पाये जाते है। कुछ अच्छे दुग्ध फार्म व गौशालाओं में भी इस नस्ल के पशुओं को रखा गया है। इस नस्ल के पशु अधिकतर लाल रंग लिए व कुछ के शरीर पर लाल काले, लाल सफेद रंग की आभा लिये होते हैं। इस नस्ल की गायों का औसतन दुग्ध उत्पादन 1400 किलोग्राम (1200-2000) है। अच्छी गाय का दूध 26-27 किलोग्राम प्रतिदिन व्यांत का दूध 4500 किलोग्राम तक पाया गया है। प्रथम ब्यांत में पशु की औसतन आयु लगभग 40-60 माह के बीच व ब्यांत अंतराल अवधि लगभग 430 से 490 दिन तक पाई गई है।

थारपारकर :– इस नस्ल का नाम इसके उद्‌गम स्थान थार के नाम से जाना जाता है। भारत में यह नस्ल भारत पाक सीमा से सटे राजस्थान से गुजरात और कच्छ जिले तक पाई जाती है। कुछ पशु सूरतगढ़, श्रीगंगानगर (राजस्थान) में भी पाये जाते है। कुछ पशु सफेद व हल्के भूरे रंग के होते हैं। सिर मध्यम आकार का सीधा व फैला होता है। नाक बड़ी व काले रंग की होती है। कान कुछ लम्बे-चौड़े व जिन पशुओं के कान के अन्दर की खाल हल्की पीली होती है उनको सर्वोत्तम माना जाता है। गर्दन के नीचे झालर ढीली लटकी होती है। पशु का थन आगे व पीछे से बढ़ाव पूर्ण विकसित होता है। थन की खाल कोमल व पीले रंग की शिराएं लिए होती है। चूचुक लम्बे मोटे व समान दूरी पर विकसित होते हैं। इस नस्ल की गायें का प्रथम ब्यांत की औसत आयु लगभग 41 माह (37-52 माह) व औसत दुग्ध उत्पादन 1750 किलोग्राम ब्यांत अवधि 285 दिन (240-380 दिन) शुष्क अवधि 140 दिन 115-190 दिन, सेवा अवधि 128 दिन 108-190 दिन और ब्यांत अन्तराल लगभग 430 दिन (408-572 दिन) का पाया जाता है। दूध में वसा की मात्रा लगभग 4.88 प्रतिशत 4.72-7.90 और एस.एन.एफ. 9.2 प्रतिशत तक होता है।

राठी :– राठी नस्ल के पशु का नाम राठ समुदाय से पड़ा है। इस नस्ल के पशु लाल सिंधी, थारपारकर, यानी साहीवाल नस्ल के मिश्रण के परिणाम का विकसित रूप है। इनका केन्द्र राजस्थान का बीकानेर जिला है। इस नस्ल के पशुओं का रंग भूरा, मटमैला, भूरा काला होता है। थन व चूचुक पूर्णतया विकसित पाए जाते हैं। इस नस्ल के पशुओं की औसत दुग्ध उत्पादन 1500 किलोग्राम है। प्रथम ब्यांत औसत आयु लगभग 36-50 माह है और ब्यांत अन्तराल अवधि 450-620 दिन तक है।

देवनी :– यह नस्ल महाराष्ट्र राज्य व मराठावाड़ा क्षेत्र के पास की एक द्विउद्‌देशीय नस्ल के रूप में लोकप्रिय है। यह नस्ल कर्नाटक, आंध्रप्रदेश राज्यों के कुछ भागों में पाई जाती है। यह प्रभनी, नांदेड़ महाराष्ट्र कर्नाटक के बिदर जिले और उस्मानाबाद जिले में भी पाई जाती है। शरीर का रंग ज्यादातर काला व सफेद धब्बेदार होता है। इस नस्ल के पशुओं को शरीर की रंग रचना के आधार पर तीन भागों में बांटा गया है। इन पशुओं के शरीर पर काले व सफेद धब्बे होते हैं। कान भूरे रंग के होते हैं। कुछ पशुओं के कान व सिर गिर नस्ल के पशुओं के समान पाए जाते हैं। झालर मध्यम आकार की होती है। थन मध्यम विकसित होता है। इस नस्ल के पशु शांत प्रवृति के होते हैं । इस नस्ल के पशुओं को प्रथम ब्यांत अवधि 30 से 51 माह है। दुग्ध उत्पादन औसतन 940 किलोग्राम है। दुग्ध देने की औसत आयु लगभग 9-10 मास है। ब्यांत अन्तराल 420-470 दिन का है। दूध में 4.3 प्रतिशत वसा, 9.7 प्रतिशत एस.एन.एफ. 14.0 प्रतिशत ठोस पदार्थ पाया जाता है। देवनी नस्ल के बैलों को भारी कार्य करने के लिए पसन्द किया जाता है।

हरियाना :– हरियाना उत्तर भारत की एक प्रमुख दोहरी उद्देशीय नस्ल है। इसके मूल प्रजनन केन्द्र रोहतक, सोनीपत, भिवानी, हिसार, जींद, गुड़गांव जिलों में है। इस नस्ल के पशु जोधपुर, अलवर, राजस्थान, मेरठ, बुलन्दशहर और पश्चिमी उत्तरप्रदेश के अलीगढ़ जिले में पाए जाते हैं। इस नस्ल के पशु सफेद व हल्के भूरे रंग के होते हैं। बैलों का रंग अपेक्षाकृत गहरा भूरा होता है। इन पशुओं के सींग छोटे व थूथन काला होता

है। आँखें बड़ी होती हैं। इस नस्ल की गायों का थन विकसित फैला हुआ होता है। चूचुक भी पूर्ण विकसित व मध्यम आकार के होते हैं। पूँछ कुछ छोटी व पतली होती है। प्रथम ब्यांत की औसत आयु 52 माह, एक ब्यांत का दूग्ध उत्पादन 690 से 1750 किलोग्राम है, दुग्ध देने की अवधि लगभग 270 दिन, औसत 480 दिन का है। इस नस्ल की गाय के दूध में वसा लगभग 4.5 प्रतिशत और 9.1 प्रतिशत एस.एन.एफ.पाया जाता है।

कान्क्रेज :– कान्क्रेज भारत की भारी नस्लों में से एक है। यह नस्ल कच्छ के रण दक्षिण में मेहसाणा, अहमदाबाद, खेड़ा, साबरकान्था, गुजरात के बनासकांठास और राजस्थान के बाड़मेर और जोधपुर जिलों में पाई जाती है। भौगोलिक दृष्टि से उत्तरी गुजरात में यह प्रमुख नस्ल है। इस नस्ल के जानवर का रंग चमकीला, भूरा लोकिया भूरा व चमकीले काले रंग का होता है। कान बड़े व खुले हुए होते है। इस नस्ल के पशु की झालर पतली व ढीली होती है। कूबड़ विकसित होता है। प्रथम ब्यांत की औसत आयु 47.3 महीने है। औसत दुग्ध उत्पादन लगभग 1750 किलोग्राम है। ब्यांत अवधि लगभग 295 दिन और ब्यांत अन्तराल 490 दिन का होता है। दुग्ध वसा 4.8 प्रतिशत है।

ओन्गोल :– इस नस्ल के पशु नैल्लोर नस्ल के नाम से भी जाना जाता है। क्योंकि पहले ये नैल्लोर जिले में प्रायः पाई जाती है। प्रजनन सीमा की दृष्टि से ये पशु नैल्लोर से बिजीनाग्राम, चिन्तूर, करनुल, कुडेफ, अनंतपुर, नलगोंडा, महबूबनगर और आन्ध्रप्रदेश के खम्भाम जिले के तट तक फैले हुए है। नर के सिर गहरे रंग का होता है। आँखें व थूथन काले रंग व आँखों के चारों ओर काला घेरा बना होता है। बछड़े ज्यादातर सफेद व कभी-कभी लाल भूरे रंग के होते हैं। जैसी ही बडड़े 6 महीने या एक साल के होते हैं तो इनका रंग सफेद से भूरे रंग में बदल जाता है। ओन्गोल भारी पशु है, खाल ढीली व मांसल होती है। कान खड़े रहते हैं व उनके अन्दर का रेशा सफेद होता है। नर की गर्दन पर काले बाल होते है। झालर बड़ा पंख के आकार का मांसल और सलवट लिए होता है।

नर की अपेक्षा मादा की गर्दन लम्बी व पतली होती है। थन व चूचुक पूर्ण विकसित होते हैं। त्वचा चिकनी, नर्म व हल्की मोटी व ढीली होती है। प्रथम ब्यांत की औसत आयु 48 मास है। औसत दुग्ध उत्पादन लगभग 688 किलोग्राम (475 से 1000 किलोग्राम) ब्यांत अवधि लगभग 230 दिन औसत शुष्क अवधि 260 दिन, औसत सेवा अवधि 190 दिन (128-310 दिन) और ब्यांत अन्तराल 500 दिन 420 से 720 दिन का होता है। इस नस्ल की गायों के दूध में औसत वसा 4.2 प्रतिशत पाई जाती है।

गायों की संकरित नस्ले

देशीय गायों में तेजी से सुधार लाने के लिए स्वदेशी पशुओं को विदेशी नस्लों के सॉडों के जमे वीर्य से संकर प्रजनन द्वारा नए नस्ल के पशु तैयार करने में सफलता प्राप्त हुई है। जिनमें कर्ण स्विस, कर्ण फ्रिज, फ्रिजवाल, सुनन्दिनी को उच्च दुग्ध उत्पादन के लिए तैयार किया गया है।

कर्ण स्विस :– कर्ण स्विस नस्ल के पशु को ब्राउन स्विस और लाल सिन्धी जेबू गाय और साहीवाल नस्ल से संकरित कराकर राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान करनाल द्वारा विकसित किया गया है। ब्राउन स्विस नस्ल के बैलों के जमे वीर्य को अमेरिका से आयात किया गया था। प्रथम ब्यांत की औसत आयु 32 से 34 महीने की है। 305 दिन की औसत दुग्ध उत्पादन लगभग 3350 किलोग्राम है व श्रेष्ठ 305 दिन का दुग्ध उत्पादन 7096 किलोग्राम तक पाई गई है। औसत सेवा अवधि शुष्क अवधि और दुग्ध अन्तराल क्रमशः 117 दिन, 85 दिन और 404 दिन है। इस नस्ल की गायों के दूध में औसत वसा 4.1 प्रतिशत व एस.एन.एफ. 9.2 प्रतिशत पाया गया है।

कर्ण फ्रिज :– कर्ण फ्रिज नस्ल के पशु को हाल्स्टीन फ्रीजियन और थारपारकर नस्ल को संकरित कर राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान करनाल द्वारा विकसित किया गया। इस नस्ल के प्रथम ब्यांत की औसत आयु 30 से 32 महीने और 305 दिन का दुग्ध उत्पादन 3500-4200 किलोग्राम तक पाया गया है। औसत सेवा अवधि शुष्क अवधि और दुग्ध अंतराल अवधि क्रमशः 123, 104 और 404 दिन की है। इस नस्ल की श्रेष्ठ गाय का एक दिन का 46.5 किलोग्राम दूध व 8338 किलोग्राम दूध 300 दिन का रिकार्ड किया गया है। औसत वसा 4.10 प्रतिशत व एस.एन.एफ. 8.92 प्रतिशत पाया गया है।

फ्रीजवाल :– फ्रीजवालः नस्ल के पशु को हाल्स्टीन फ्रीजियन और साहीवाल गायों को संकरित कर मिल्टी डेरी फार्म के सहयोग से गौपशु परियोजना निदेशालय आई.सी.ए.आर. मेरठ, उत्तरप्रदेश द्वारा विकसित किया गया है। प्रजनन कार्यक्रम के अन्तर्गत उच्च विदेशी नस्ल के वीर्य को श्रेष्ठ हाल्स्टीन फ्रीजियन व संकर बैलों के वीर्य द्वारा इस प्रकार डिजाईन किया गया है कि गायों का दुग्ध उत्पादन 62.5 प्रतिशत तक ज्यादा हुआ है। प्रथम ब्यांत का औसत उत्पादन औसत शुष्क अवधि व दुग्ध अन्तराल अवधि क्रमशः 160, 115 और 425 दिनों की है। दूध के 3.5 से 4.5 प्रतिशत वसा व 8.5 से 9.5 प्रतिशत तक एस.एन.एफ. पाया जाता है।

सुनन्दिनी :– भारत के स्विटजरलैंड द्विपक्षीय कार्यक्रम के अंतर्गत स्विस बैल के प्रशीतित वीर्य को स्थानीय लाल सिन्धी और साहीवाल गायों से क्रॉस कर केरल में अधिक दूध देने वाली नस्ल को विकसित किया जिसको सुनन्दिनी नाम दिया गया। इस संकर नस्ल को आगे हालस्टीन फ्रिजियन और विदेशी नस्ल जर्सी के माध्यम से सुधार किया गया और 50 से 60 प्रतिशत विदेशी नस्ल का असर पाया गया। इस नस्ल का औसत दुग्ध उत्पादन गांव के झुण्ड व रखरखाव व कृषि मौसम स्थित के आधार पर 1400 से 1800 किलोग्राम पाया गया। प्रथम ब्यांत की आयु 35 महीने व दुग्ध अन्तराल 450 दिन का होता है।

नस्ल सुधार हेतु चयनात्मक प्रजनन

दूध उत्पादन एवं उत्पादकता की वृद्धि के लिए डेरी एवं द्विउददेशीय नस्लों में चयनात्मक प्रजनन अति आवश्यक है। मध्यम निवेश डेरी उत्पादन प्रणाली के अन्तर्गत विभिन्न परिभाषित नस्लों के गौपशु किसानों द्वारा प्रजनन क्षेत्रों में पाले जाते हैं। गायों का चुनाव संभावित उत्पादन क्षमता ई.पी.ए. अथवा प्रजनन मान पर आधारित होना चाहिए। लगभग 20-25 प्रतिशत गायों की प्रतिवर्ष छंटनी होनी चाहिए एवं इतनी ही प्रतिवर्ष गाय प्रतिस्थापित भी होनी चाहिए।

युवा सांड का चयन उनकी मादा एव दादी की दुग्ध उत्पादन क्षमता पर आधारित अपेक्षित भविष्य ई.पी.डी. कामुक प्रवृति वीर्य, गुणवता एवं प्रशीतन क्षमता के आधार पर किया जाना चाहिए। सन्तति परीक्षण में सम्मिलत सांडों के प्रजन कमान का आंकलन उनकी सन्तति की निष्पादन क्षमता के आधार पर किया जाना चाहिए।

श्रेष्ठ एवम् परीक्षित सांडों का वीर्य संगठित गौपशु समूहों में युवा सांड उत्पादन के लिये किया जाता है जिन्हें बाद में सन्तति परीक्षित कार्यक्रमों में सम्मिलत किया जा सकता है।

भारत में चयनात्मक प्रजनन गुजरात में गीर तथा कांकरेज, राजस्थान में राठी, थारपारकर, हरियाणा, पंजाब तथा पश्चिमी उत्तरप्रदेश में हरियाना तथा आन्ध्रप्रदेश में ओन्गोल के चयनित सांडों का प्रयोग किया जाना चाहिए। चयनित प्रजनन द्वारा 1-2 प्रतिशत आनुवंशिक विकास दर प्रतिवर्ष प्राप्त होती है, जिसे भ्रूण प्रत्यारोपण द्वारा लगभग दोगुणा किया जा सकता है।

भैंसों की मुख्य नस्लें

अखिल भारतीय पशुगणना के अनुसार भारत में 10.5 करोड़ भैंसे है। इनमें से 5.28 करोड़ भैंसे 50.1 प्रतिशत प्रजनन योग्य एवम् 3.56 करोड़ भैंसे 33.84 प्रतिशत दूध में हैं। मुख्यतः आठ डेरी नस्लें हैं- मुर्रा, नीलीरावी, भदावरी, जार्फराबादी, सुरती, मेहसाना, नागपुरी एवं बन्नी। दूध देने के अतिरिक्त भैंसों का उपयोग गाड़ी खींचना, हल चलाना व अन्य कृषि कार्य करने में किया गया है। कुछ नस्लों को महत्वपूर्ण विशेषतओं के बारे में नीचे चर्चा की गई है।

मुर्रा :- मुर्रा नस्ल का प्रजनन क्षेत्र हरियाणा राज्य के रोहतक, हिसार, जींद और पंजाब राज्य के नाभा और पटियाला जिला है। इस नस्ल के पशुओं का शरीर भारी, गर्दन व सिर अपेक्षाकृत लम्बे, सींग छोटे व मुड़े हुए, थन पूर्णतया विकसित व पूंछ लम्बी होती है। पशु का रंग गहरा काला होता है। नर ज्यादा शक्तिशाली व बोझा ढोने वाले होते है। इस नस्ल की भैंस का औसत दुग्ध उत्पादन उपज 1500 से 2500 किलोग्राम और अच्छी भैंसे 3500 किलोग्राम से भी अधिक दूध प्रति ब्यांत देती हैं। प्रथम ब्यांत आयु गांवों में 45 से 50 महीने और अच्छे झुण्ड में 30 से 40 महीने होती है। ब्यांत अन्तराल अवधि 450-500 दिन का होता है।

भदावरी :– इस नस्ल के पशु उत्तरप्रदेश राज्य में आगरा जिले की भदावर तहसील एवं इटावा जिले और मध्यप्रदेश राज्य के ग्वालियर जिले में पाए जाते है। इन पशुओं का शरीर मध्यम आकार का, सिर अपेक्षाकृत छोटा, टांगे छोटी, खुर काले और पूंछ लम्बी, लचीली और काले से सफेद दाग वाली होती है औसत दुग्ध उत्पादन प्रति ब्यांत 800 से 1000 किलोग्राम होता है तथा वसा प्रतिशत 8 प्रतिशत दूसरी नस्लों से अधिक होती है।

जाफराबादी :– इस नस्ल का प्रजनन क्षेत्र गुजरात राज्य के कच्छ, जूनागढ़ और जामनगर जिला है। शरीर लम्बा व गढ़ा हुआ नहीं है। मादा में झालर ढीली व थन पूर्णतया विकसित होती है। सिर व गर्दन मांसल हैं सींग भारी व गर्दन की ओर झुके होते हैं। पशु का रंग ज्यादातर काला होता है। और दुग्ध उत्पादन 1000 से 1200 किलोग्राम होता है। इन जानवरों को ज्यादातर परम्परागत प्रजनन द्वारा अनुरक्षित किया जाता है। जो मालधारी कहलाते है। जो घूमने फिरने जुताई व गाड़ी चलाने व भार ढोने के काम आते हैं।

सुरती :– इस नस्ल का प्रजनन क्षेत्र गुजरात राज्य के खेड़ा और बड़ौदा जिले में है। शारीर सुन्दनर व मध्यम आकार का, सिर लम्बा व कमर सीधी होती है। पूंछ लम्बी व शरीर का रंग काला भूरा होता है। दूग्ध उत्पादन 900 से 1300 किलोग्राम प्रथम ब्यांत आयु 40 से 50 महीने, ब्यांत अन्तराल अवधि 400 से 500 दिन की होती है। दूध में वसा की मात्रा 8 से 10 प्रतिशत तक पाई जाती है। इस नस्ल के भैंसे अच्छे व हल्के कार्य करने के योग्य होते हैं।

मेहसाना :– इस नस्ल का प्रजनन क्षेत्र गुजरात को माना जाता है। यह नस्ल सुरती और बान्सकण्ठा जिलों में पायी जाती है। यह नस्ल सुरती और मुर्राह नस्ल में प्रजनन द्वारा विकसित की गई है। इसका शरीर मुर्राह की अपेक्षा लम्बा होता है। रंग ज्यादातर काला भूरा होता है। सिर व पूंछ पर सफेद धब्बे भी पाए जाते हैं। दुग्ध उत्पादन 1200 से 1500 किलोग्राम प्रति ब्यांत व ब्यांत अन्तराल अवधि 450 से 550 दिन की होती है। इस नस्ल के भैंसे अच्छे व भारी कार्य करने योग्य होते हैं।

नीली रावी :– यह नस्ल पंजाब में फिरोजपुर जिले और पाकिस्तान में साहीवाल जिले के पास के क्षेत्रों में पाई जाती है। इस नस्ल के पशुओं का सिर कुछ उभरा हुआ व आँखों के पास कुछ दबा हुआ होता है। सींग छोटे, गर्दन लम्बी, पतली होती है। थन पूर्ण विकसित होता है। रंग अधिकतर काला व सिर , माथे टांगों पर सफेद धब्बे होते हैं। दुग्ध उत्पादन 1500 से 1800 किलोग्राम प्रति ब्यांत, ब्यांत अन्तराल 500 से 550 दिन और प्रथम ब्यांत आयु 45 से 50 महीने होती है। भैंसों के झोटे अच्छे व भारी कार्य करने योग्य होते हैं।

बन्नी :– भारत में यह नस्ल गुजरात के कच्छ जिले में पायी जाती है। इस नस्ल का नाम इसके स्थानीय क्षेत्र बन्नी के नाम से जाना जाता है। इस नस्ल को पालने वाले किसानों को मलधारी कहते हैं । इस नस्ल की भैंस का रंग ज्यादातर काला होता है। अभी हाल ही में इसका नाम दुधारू भैंसों में राष्ट्रीय पशु संस्थान ब्यूरों, करनाल द्वारा सम्मिलित किया गया है। इस नस्ल की भैंसों को विस्तृत उत्पादन प्रणाली में रखा जाता है। ।

इस नस्ल के पशु रात के समय बन्नी चारागाहों में चरते रहते हैं। कच्छ के कुछ क्षेत्रों में इसे अर्धसघन उत्पादन प्रणाली में रखा जाता है। प्रथम ब्यांत औसत आयु 40 माह है और ब्यांत अन्तराल 12-13 माह का है। इसका प्रथम ब्यांत का दूध लगभग 2300 किलोग्राम रिकार्ड किया गया है। इसके दूध में 6.6 प्रतिशत वसा पाया जाता है। पशु जनगणना 2007 के अनुसार इस नस्ल की भैंसों की संख्या 5 लाख 25 हजार के लगभग थी।

भैंसों के आनुवंशिक विकास के लिए प्रजनन नीतियां

उच्च निवेश उत्पादन प्रणाली के अंतगर्त भैंसे अधिकतर सरकारी एवं गैर-सरकारी संगठित फार्मों पर रखी जाती है। इसके अतिरिक्त कुछेक साधन समपन्न व्यवसायिक कृषक भी भैंसों का उत्पादन गहन प्रणाली के अन्तर्गत करते हैं। भैंसों के आनुवंशिक विकास के लिए विभिन्न नस्लों के सन्तति परीक्षित उन्नत सांडों का प्रयोग इस प्रणाली में जरूरी है। उत्कृष्ठ प्रजनक सांडों के उत्पादन के लिए मौजूदा संगठित फार्मों पर मुर्राह, सुरती, नीलीरावी, नागपुरी, भदावरी तथा जाफराबादी भैंसों की नस्लों को और सुदृढ़ करने की आवश्यकता है। सन्तति परीक्षण के लिए किसानों की भैंसों को भी कार्यक्रम में शामिल करना चाहिए।

संक्षेप में यह निष्कर्ष निकलता है कि देश में भैंसों के आनुवांशिक विकास के लिए वहां के कृषि-जलवायु एवं उपलब्ध संसाधनों को दृष्टि में रखते हुए विभिन्न दुग्ध उत्पादन प्रणालियों के अनुसार ही प्रजनन नीतियों का चुनाव करना चाहिए ताकि वांछित अनुवांशिक दर प्राप्त हो सके।

मिल्किंग सिस्टम (दूध निकने के तरीके)

मिल्किंग पार्लर को बनाने व निर्णय से पहले यह ध्यान में रखना जरूरी है की वहाँ पर दूध निकालने के कौन–कौन से तरीके प्रथा/प्रचलन में है। विकसित देशों में जहाँ पर श्रम (मजदूर) बहुत कम व महगें है वहाँ पर मशीन मिलकिंग बहुत व्यापक रूप से प्रचलित है और बड़ी–बी व्यवसायिक डेयरी फार्म पर भी यह उपयोग में ली जाती है। मशीन मिल्किंग न केवल मजदूर कि आवशयकता को कम करती है बल्कि यह हाथ से निकले गए दूध की तुलना में बेहतर गुणवत्ता वाला दूध उत्पादन में सहायता करती है। हालांकि विकासशील देशों में जहा छोड़े डेरी फार्म के साथ–साथ सस्ते मजदूर उपलब्ध है वहां पर मशीन मिल्किंग आर्थिक रूप से सही साबित नहीं होती। इसके आलावा मशीन को बिजली की आवश्यकता होती हैं तथा इसके उपकरण/मशीन के भाग हाथ से दूध निकलने कि तुलना में महगें होते हैं। वाणिज्यिक फार्म जहां पर कई गायों का दूध एक समय पर तथा एक साथ निकाला जाता हैं वहां मशीन मिल्किंग बहुत जरूरी हो जाती है।

दुग्ध शाला (मिल्किंग पार्लर)

मिल्किंग पार्लर के कई प्रकार दुनिया भर के डेरी फार्म पर उपयोग किये जाते हैं जिनमें से कुछ निम्न प्रकार है

1. एबरेस्ट पार्लर

इस प्रकार पार्लर में एक–एक कर पशु पार्लर अन्दर जाता हैं और दुग्ध दोहन के पश्चात बाहर आता हैं। गाय के खड़े होने की जगह की चौड़ाई 1 से 1.1 मीटर की होनी चाहिए यदि बाल्टी में हाथों द्वारा दूध दोहन किया जाता हैं। जबकि पाईप लाईन सिस्टम में 0.7 से 0.8 मीटर का स्थान काफी होता हैं। दोनों तरीकों में दोहक लिए 0.6 से 0.8 मीटर कि चौड़ाई का स्थान चाहिए। इसकी मुख्य खामी यह हैं कि इसमें गाय और दुग्ध दोहन के बीच की दूरी अधिक होती हैं तथा सामान फर्श का उपयोग के चलते दोहक को दुग्ध निकलने में परेशानी होती है।

2. टेन्डम पार्लर

इस प्रकार के पार्लर में दूध दोहक प्रत्येक गाय पर ध्यान केंद्रित कर सकता हैं। यह छोटे वाणिज्यिक फार्म जहाँ पर अधिक दूध देने वाली गाय रखी जाती हैं वहां यह ज्यादातर उपयोग में लिया जाता हैं। इस प्रकार के पार्लर की मुख्य कमी यह हैं की समान क्षमता के अन्य प्रकर के पार्लर कि तुलना में इसके निर्माण के लिए अधिक स्थान व आय कि जरूरत पड़ती हैं।

3. हरिंगबोन पार्लर

इस प्रकार के पार्लर में कम स्थान की आवश्यकता होती हैं तथा नाँद दीवार के साथ लगी होती हैं। इस प्रकार के पार्लर काफी प्रचलित होते हैं जिसका मुख्य कारण इसकी संरचना सुलभ व आरामदायक तथा इसकी दुग्ध दोहन कि क्षमता अन्य पार्लरों के तुलना में अधिक होती हैं परन्तु इसकी मुख्य कमी यह हैं की इसमें गाय दोहक के साथ खड़ी होती हैं अतः गाय दोहक को लात मरती हैं।

एकत्रित बाड़ा (कलेक्टिंग यार्ड)

गायों को सामान्य रूप से दूध दोहन से पहले एक क्षेत्र में एकत्रित किया जाता हैं उसे कलेक्टिंग यार्ड (बाड़ा) कहते हैं। यह गाय के बाड़े का एक भाग या जगह है जो अस्थाई रूप से चैन की चार दीवारी से बंद रहता हैं। एकत्रित क्षेत्र में प्रति गाय को न्यूनतम 1.1 से 2.0 वर्ग मीटर का स्थान होना चाहिए तथा बड़े सींग वाली गायों के लिए यह स्थान अधिक होना चाहिए। पार्लर से दूर 20 से 100 मिमी/मी का ढलान होना चाहिए। यह न केवल जल निकास को सुधारता है बल्कि गायों को पार्लर में प्रवेश के लिए प्रोत्साहित करता हैं। एकत्रित क्षेत्र को आसानी से सफाई के लिए तथा स्वच्छता बनाये रखने के लिए इसकी फर्श को पक्का बनाना चाहिए। इसके ऊपर एक छत जो पशुओं को छाया प्रदान करती है व बरसात के मौसम में गायों को भीगने से बचती है जोकि बांछनीये हैं।

4 गाय/भैंसों के उत्पादन पर गर्मी का प्रभाव एवं बचाव के उपाय

पशुओं में पर्यावरण तापमान सहन करने की एक सीमा होती हैं। इस तापक्रम सीमा के अन्दर एक ऐसी तापक्रम सीमा होती है जिसमें पशुओं से अधिकतम उत्पादन लिया जा सकता हैं। इसे थर्मोन्यूट्रल जोन के नाम से जाना जाता हैं। तापमान की यह सीमा पशुओं के स्वास्थय और उनके अच्छे विकास के लिये अनुकूल होती हैं। कुछ पर्यावरणीय कारक जो गर्मी-तनाव को बढ़ाने में योगदान करते है, इनमें तापमान, उच्च आर्द्रता और दीप्तीमान ऊर्जा (धूप) शामिल हैं। गर्मी-तनाव को सामान्यतः उस बिन्दु से परिभाषित किया जा सकता है, जहां पर पशु अपने शरीर की गर्मी को पर्याप्त मात्रा में शरीर से नहीं निकाल पाते और जिसके कारण पशु शरीर का तापमान संतुलन बिगड़ जाता हैं।

पर्यावरण स्थिति, जिसमें तापमान आर्द्रता सूचकांक का उपयोग करके गर्मी तनाव को परिकलित किया जा सकता हैं। तापमान आर्द्रता सूचकांक को परिकलित करने के लिये निम्नलिखित समीकरण का इस्तेमाल किया जा सकता हैं।

तापमान आर्द्रता सूचकांक = 0.72 शुष्क बल्ब तापमान (°C)+आर्द बल्ब तापमान (°C)+40.6

जब तापक्रम आर्द्रता सूचकांक 72 या इससे कम होता है तो पशु आरामदायक स्थिति में होता है। जब यह सूचकांक 75-78 तक होता है तो पशु पर गर्मी का प्रभाव कम होता है, लेकिन जब यह सूचकांक 80 या इससे अधिक होता है तो पशु पर अत्याधिक गर्मी का प्रभाव होता है तथा उत्पादकता विपरीत रूप से प्रभावित होती है।

गर्मी तनाव के परिणामस्वरूप पशुओं में कुछ परिवर्तन दिखाई पड़ते है, जो निम्नलिखित है :-

- शरीर तापमान में बढ़ोत्तरी एवं शारीरिक तापमान 102.5 F से ऊपर
- श्वसन दर में बढोत्तरी 70-80/मिनट से अधिक
- ऊर्जा की आवश्यकता में वृद्धि, पशुओं में अत्याधिक गर्मी के समय तापक्रम नियंत्रण तंत्र सक्रिय हो जाता है, जो अतिरिक्त गर्मी को नष्ट कर बाहर निकाल शरीर का सामान्य तापमान बनाये रखने में मदद करता है, उदाहरण के लिये श्वसन दर में बढ़ोत्तरी। गर्मी तनाव के दौरान पशुओं में ऊर्जा की आवश्यकता 20-30 प्रतिशत तक बढ सकती है। त्वचा के रक्त प्रवाह में वृद्धि होती है, जो शारीरिक गर्मी को नष्ट करने में साहयता करती है। इस समय, शरीर के विभिन्न आन्तरिक अंगों मे रक्त प्रवाह कम हो जाता है।
- पोषक तत्वों का उपयोगः- गर्मी-तनाव के दौरान सामान्य तत्व, सोडियम, पौटाशियम और बाइकार्बोनेट इत्यादि की मात्रा कम हो जाती है। इस कमी के कारण पशुओं की श्वसन दर में वृद्धि होती है। इससे अम्ल और क्षार संतुलन में बदलाव आ सकता है और परिणामस्वरूप उपापचय क्षारीय हो सकता है, और जिसके कारण पोषक तत्वों के पाचन उपयोग की दक्षता में कमी आ सकती है।

- शुष्क पदार्थ का सेवन :- गर्मी-तनाव के दौरान डेयरी पशुओं में शुष्क भोजन की मात्रा घट जाती है, यह अवसाद गर्मी-तनाव की अवधि के आधार पर अल्पकालिक या दीर्घकालिक हो सकता हैं।
- दुग्ध उत्पादन :- गर्मी-तनाव के दौरान दुधारू पशुओं का दुग्ध उत्पादन सामान्यताः घट जाता हैं। यह कमी अस्थायी या लंबी अवधि तक हो सकती है, इसका आकलन गर्मी तनाव की गंभीरता के आधार पर किया जा सकता है। दुग्ध उत्पादन में यह कमी 10 से 25 प्रतिशत तक हो सकती हैं।
- प्रजनन :- गर्मी-तनाव की वजह से दुधारू पशुओं की प्रजनन क्षमता में भी कमी पाई गयी है। पशुओं में यह प्रभाव लंबे समय तक हो सकता हैं। जिसके फलस्वरूप गायों में निम्नलिखित कमियां हो सकती हैंः-

    1. मदकाल अवधि का समय और तीव्रता कम हो जाती है।
    2. गर्भाधान की दर (प्रजनन) में कमी।
    3. डिब्बग्रंथि की वृद्धि, आकार और विकास में कमी।
    4. गर्भित पशुओं में भ्रूण मौत का खतरा बढ़ जाता हैं।
    5. भ्रूण के विकास और आकार में कमी।

गर्मी-तनाव के प्रभाव की गंभीरता का निर्धारण :-

गर्मी-तनाव की गंभीरता का प्रभाव निम्न कारकों की तीव्रता पर निर्भर करता है, जो निम्नलिखित हैः-

- वास्तविक तापमान और आर्द्रता।
- गर्मी-तनाव की अवधि ।
- रात का तापमान।
- वायु-संचार और हवा का प्रवाह।
- पशु का आकार।
- गर्मी-तनाव के पहले दुग्ध उत्पादन और शुष्क भोजन की मात्रा के सेवन का स्तर।
- पशुशाला-प्रकार, वायु-संचार, भीड़भाड़ आदि।
- जल उपलब्धता।
- पशु की जाति/प्रजाति।
- पशु की त्वचा का रंग हल्के रंग की त्वचा वाले पशु सूर्य के प्रकाश को कम अवशोषित करते है।

गर्मी प्रभाव को कम करने के उपाय :-

दुधारू पशुओं में गर्मी-तनाव के प्रभाव को कम करने के प्रमुखतया दो विकल्प होते हैं।

1. राशन समायोजन
2. वातावरण समायोजन

1. राशन समायोजन :- राशन समायोजन का मुख्य लक्ष्य राशन को समायोजित कर उर्जा और प्रोटीन की मात्रा में वृद्धि करना है, जो पशु के स्वास्थय और रूमेन वातावरण को सामान्य बनाये रखते है। राशन में अनाज (दाना) की मात्रा को बढ़ाया जाता है और चारे की मात्रा को कम किया जाता है। यह बदलाव रूमेन की अम्लरक्तता को प्रेरित करेगा और पशु के स्वास्थ्य में सुधार होगा।

(I) यदि संभव हो तो उच्च गुणवत्ता वाले चारे का चयन करें।

(II) राशन में रेशों (ADF, NDF) की मात्रा, जिसमें प्रभावकारी रेशा सामान्य रहता है, इसलिये बिना रेशे वाले उत्पाद का इस्तेमाल करना चाहिए, जैसे- Soyhulls, Beet Pulp or Citrus Pulp.

(III) राशन में कुछ अतिरिक्त वसा की मात्रा बढ़ाई जानी चाहिए। जो सूखे राशन का 5-6 प्रतिशत से अधिक नहीं होनी चाहिए।

(IV) अच्छे चारे का चयन करे जो जानवरों में एक उच्च पाचन शक्ति का कार्य करती हैं। यह पशुओं में पोषक तत्वों से उत्पन्न गर्मी को कम करती हैं।

(V) संतुलित राशन प्रोटीन स्तर, रूमेन में पचा सकने वाली प्रोटीन और घुलनशील प्रोटीन के उच्चस्तर को कम करता हैं। पशु शरीर से अतिरिक्त प्रोटीन को शरीर से निकालने के लिये अधिक उर्जा को व्यय करते हैं।

(VI) बफर सोड़ियम बाइकार्बोनेट, मैग्नीशियम आक्साइड और सोड़ियम कार्बोनेट को पशुओं के भोज्य पदार्थो में मिलाकर रूमेण के सामान्य वातावरण को नियंत्रित रखा जा सकता हैं।

(VII) रक्त के पौटेशियम के स्तर को ध्यान में रखना चाहिए जो कि गर्मी से प्रभावित पशुओं में ज्यादा नुकसान करता है, इसलिये राशन में पौटेशियम एवं मैग्नीशियम स्तर को बढ़ाने की भी आवश्यकता होती है।

(VIII) राशन के लिये खमीर या खमीर कल्चर के चारे को बढ़ाने से कुछ लाभ हो सकता हैं।

चारा प्रबन्धन :-

चारा प्रबन्धन प्रथाओं का इस्तेमाल करके भी गर्मी तनाव के प्रभावों को कम किया जा सकता है, इनमें से कुछ निम्नलिखित हैः-

1. ताजा स्वादिष्ट, उच्च गुणवत्ता वाला अधिकतम चारा पशुओं को खिलाना चाहिए, यदि (खोर) में चारा गर्म, बासी या खराब है तो उसे हटा देना चाहिए।
2. क्या राशन मिश्रित और दैनिक आधार पर समान रूप से वितरित कर रहे है।
3. सभी गायों को एक ही समय में चारा दिया जाना चाहिए।
4. यदि पशु राशन की छटाई करके खा रहे हैं, तो चारे में कुछ पानी मिला देने से चारा अच्छी तरह से मिश्रित हो जाता है।
5. यदि पशुओं के चारा खाने के समय में बदलाव किया जाये तो पशु प्रातः काल, सांय काल रात्री के समय में एवं ठंड के समय अधिक चारा खाता है।

जल प्रबन्धन :-

1. क्या पानी पीने वाले उपकरणों में स्वच्छ और ताजा पानी होता हैं।
2. वहां पर पशुओं के लिये पर्याप्त पानी हैं।
3. वहां पर गायों के समूह के लिए एक से अधिक जगह पर पानी की व्यवस्था होनी चाहिए।
4. गर्मी तनाव के दौरान पशुओं में पानी की खपत 20 से 50 प्रतिशत तक बढ़ सकती हैं, इसलिये पानी की पर्याप्त व्यवस्था होनी चाहिए।

2. वातावरण समायोजन :-

1. क्या पशुओं का आवास भीड़भाड़ वाला है? यदि हाँ, तो क्या भीड़भाड़ को कम किया जा सकता हैं।
2. क्या सभी पशुओं के लिये छाया उपलब्ध है? छाया सूर्य विकिरण के प्रभाव को कम कर देता हैं।
3. क्या पशुओं के आवास क्षेत्र में वायु प्रवाह है? अधिक सुविधा के लिए अधिक वायु-संचार की आवश्यकता होगी। कई मामलों में हवा का प्रवाह बढ़ाने के लिये पंखों की आवश्यकता होगी।

5 दुधारू पशुओं के लिए आहार

पशुपालन व डेरी उद्योग का हमारे देश की अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण स्थान है, यह बताना आवश्यक है कि देश की 60-70 प्रतिशत जनसंख्या की आजीविका इस उद्योग पर निर्भर करती हैं। पशु आहार विशेषकर हरे चारे व अनाज आदि की कमी इस क्षेत्र में एक विकट समस्या हैं। एक और बात करना आवश्यक है कि इस देश की जनसंख्या तो संघन है ही इसके साथ-साथ पशु संख्या का दबाव भी अधिक है, या कहे तो विश्व भर की कुल गायों का 20 प्रतिशत, भैसों का 57 प्रतिशत हमारे देश की धरोहर तो अवश्य है परन्तु उनकी उत्पादन क्षमता अन्य देशों की तुलना में बहुत कम हैं। समुचित आहार की कमी के चलते पशु अपनी क्षमता के अनुरूप उत्पादन नही कर पाते हैं। यदि राजस्थान की बात करे तो सरकारी आंकडो के अनुसार पश्चिमी राजस्थान के 10 मे से 4 जिले बाडमेर, बीकानेर, जोधपुर व नागौर में तो अन्य स्थानों की तुलना 60- 99 प्रतिशत तक तथा अन्य 5 जिलों में 20 - 59 प्रतिशत कम वर्षा दर्ज की जाती है, जिसके कारण सूखे के आसार हो जाते हैं। अतः पशुओं के लिए आहार की अनुपलब्धता भी स्वाभाविक हैं। राजस्थान की पशु गणना 2007 के अनुसार 56.66 मिलियन पशु (20 प्रतिशत गायें व 58 प्रतिशत भेड़ बकरी) इतनी बड़ी संख्या के लिए आहार आपूर्ति एक चुनौती हैं।

संतुलित आहार अर्थात् पशुओं के समुचित स्वास्थय व उत्पादन हेतु उनके आहार में सभी पोषक तत्व उचित मात्रा में उपलब्ध होने चाहिए, जो विभिन्न खाद्य पदार्थो द्वारा प्राप्त कराये जा सकते हैं। प्रकृति ने रोमन्थी पशुओं को विशेष प्रकार का पाचन तन्त्र प्रदान किया है जिसमें उनके पेट की क्षमता बहुत अधिक है, जो उनके शरीर भार का लगभग 16-20 प्रतिशत होता हैं। उनके पेट के मनुष्य की तुलना में चार भाग होते है। जिसमें उनका पहला भाग रूमन कहलाता हैं। उसमें लाखों बैक्टिरिया व प्रोटोजोआ होने के कारण वे रेशे युक्त पदार्थ जैसे कि भूसा, हे तथा अन्य कृषि उतोत्पाद आदि (जो अन्य पशु नहीं खा पाते) खा कर भी स्वस्थ व उत्पादकता बनाए रख सकते हैं। अर्थात घास फूस खाकर वे उसे अमुल्य रूप यानि दूध में परिवर्तित कर सकते हैं। ये बैक्टिरिया प्रोटोजोआ इतने सूक्ष्म होते है कि उन्हें केवल सूक्ष्मदर्शी यन्त्र द्वारा ही देखा जा सकता हैं।

पशु आहार कैसे पचता है, संतुलित आहार का क्या महत्व है, विभिन्न शारीरिक दशाओं में उनकी पोषक तत्वों की आवश्यकताओं पर प्रभाव और कैसे विभिन्न प्रकार के खाद्य पदार्थो से उन आवश्यकताओं की आपूर्ति की जा सकती हैं। इन सबकी जानकारी डेरी कृषकों के लिए आवश्यक है ताकि वे इस उद्योग से अधिक लाभ ले सके।

रूमन में असंख्य यानि लाखों जीवाणु होते है जो इन पशुओं के लिए लाभदायक होते हैं। क्योंकि वे विशेष प्रकार के एन्जाइम उत्पन करते है जिसके कारण वे सूखा चारा, भूसा, हरा चारा तथा कृषि उतोत्पाद पचा सकते है। जिस प्रकार हम मनुष्यों को विभिन्न पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है वैसे ही गोपशुओं की मुलभूत आवश्यकताए वैसे ही है।

ऊर्जा प्रदान करने वाले पदार्थ उनके आहार के मुख्य भाग होते है, ये ईधन का कार्य करते हैं। जो जीवित रहने के लिए आवश्यक हैं।

प्रोटीनः आहार में प्रोटीन वृद्धि तथा मांसपेशियों को बनाए रखने के लिए आवश्यक होता हैं।

खनिज पदार्थ : ये विभिन्न खनिज तत्व बहुत सूक्ष्म मात्रा में आवश्यक होते है जोकि अस्थियों की बनावट तथा विभिन्न एन्जाइम को सक्रिय करने के लिए जरूरी हैं। जिससे विभिन्न चपापचय समबंध क्रियाएं पूर्ण होती हैं।

विटामिन, ये कुछ कार्बनिक तत्व है जो सामान्य चपापचय में उत्प्रेरक का कार्य करते है, सूक्ष्म मात्रा में चाहिए अन्यथा इनकी कमी से अनेक प्रकार के रोगो के लक्षण प्रतीत होते हैं।

आहार के बारे में क्या जानना जरूरी है ?

आहार क्या है ?

पशु को 24 घंटों में खिलाए जाने वाले पोषक तत्वों/पदार्थों की मात्रा को आहार कहा जाता हैं। सन्तुलित आहार एक प्रकार से पूर्ण आहार होता है जिससे पशु को सभी आवश्यक तत्व पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हो।

संतुलित आहार :– आहार का संतुलित होना अति आवश्यक है अर्थात उसके सभी पोषक तत्व (प्रोटीन, कार्बोहाईड्रेट, खनिज, विटामिन) चारे, दाने, खनिज लवणों तथा विटामिन संपूरको द्वारा आवश्यक मात्रा एवंअनुपात में उपलब्ध हो।

आहार में शुष्क पदार्थ :– आहार के विभिन्न अवयवों में पानी की मात्रा भिन्न-भिन्न होती हैं। पशु आहार में हरा चारा, दाना तथा कृषि उत्पाद प्रयोग किए जाते हैं। दाने व अन्य कृषि उत्पादों जैसे भूसे, अनाज की कडवी, धान की पुराली, सूखी घास/चारा (हे) आदि में पानी की मात्रा लगभग 10-15 प्रतिशत (अर्थात शुष्क पदार्थ 85-90 प्रतिश्त) होती है। परन्तु हरे चारे में उसकी परिपक्वता के अनुसार पानी की मात्रा 70 से 90 प्रतिशत तक हो सकती हैं। शुष्क पदार्थ की आवश्यकता पूरी करने के लिए, उसमें पानी की मात्रा जांच कर हरा चारा कितना देना होगा उसका अनुमान लगाया जा सकता हैं।

उदाहरणतया यदि चारे में 80 प्रतिशत पानी है तो 20 किलो शुष्क पदार्थ के लिए 100 कि.ग्रा. हरा देना पडेगा अर्थात 100 कि.ग्रा. भार के पशु को 6 कि.ग्रा. शुष्क पदार्थ देने के लिए हरा चारा लगभग 30 कि.ग्रा. देना होगा।

आहार की संरचना के अनुसार वर्गीकरण

आहार को उनकी रासायनिक संरचना के आधार पर दो विभिन्न वर्गों अर्थात् दाना एवं चारे में बांटा जा सकता हैं। इस वर्गीकरण का मुख्य आधार उनमें पाई जाने वाली रेशे की मात्रा है, इस पर ही उनका घनत्व निर्भर

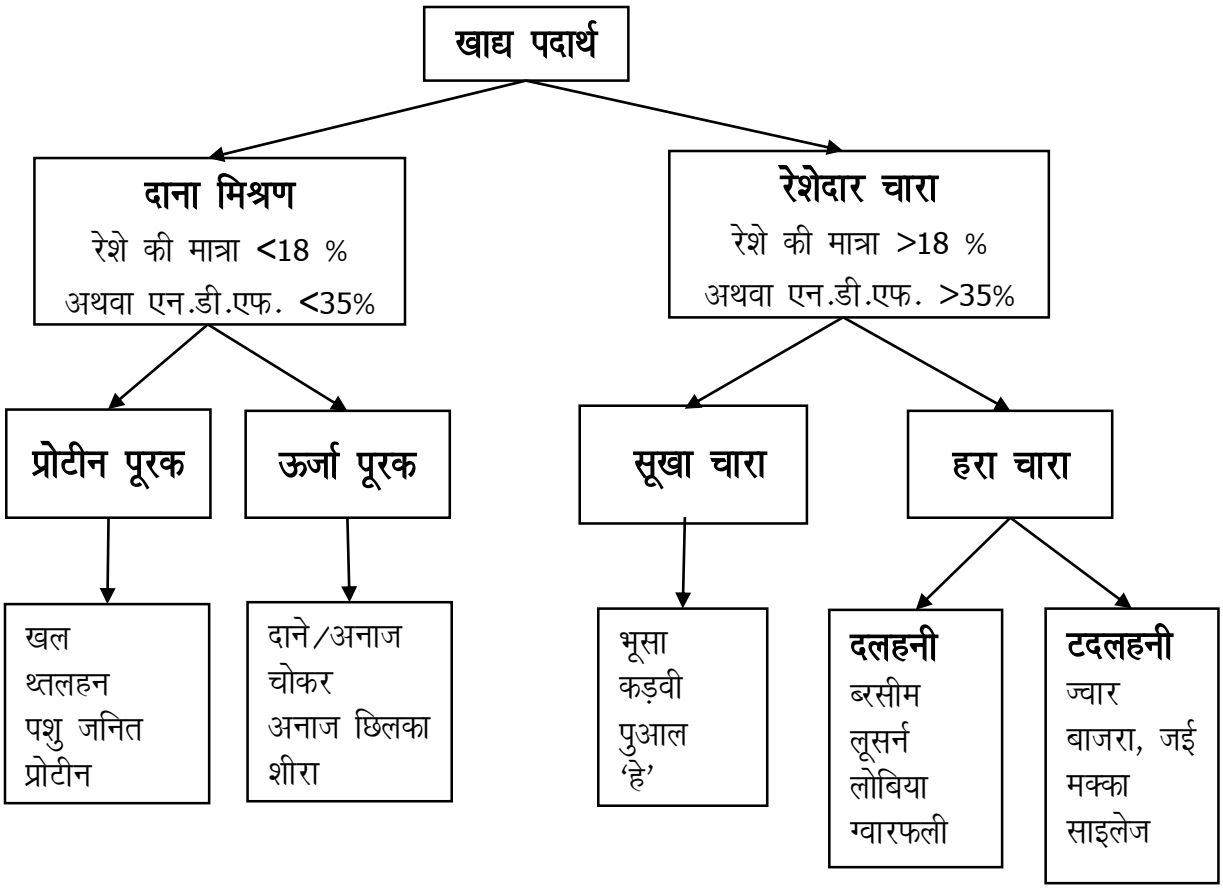

करता हैं। दाने के अवयवों में रेशा 18 प्रतिशत और एन.डी.एफ. 35 प्रतिशत से कम तथा चारे में रेशा 18 प्रतिशत और एन.डी.एफ. 35 प्रतिशत से अधिक होता हैं।

दाना मिश्रण

यह मिश्रण विभिन्न भोज्य पदार्थ जैसे कि अनाज (ऊर्जा का स्त्रोत), खल (प्रोटीन पूरक) तथा अनाज के अवशेष जैसे कि चौकर, धान की पालिश, आदि से बनता है। विभिन्न अवयवों का पोषक मान तालिका में दिया गया है। खनिज तत्व भी अधिकतर दाने में मिलाए जाते हैं।

अनाज :– यह पशु आहार का मुख्य तत्व है। तालिका में दिए पोषक मान से यह स्पष्ट है कि आम तौर पर प्रयोग किए जाने वाले अनाज (गेहूँ, चावल कणी, मक्का, जौ, ज्वार, बाजरा, जई इत्यादि) का पोषकमान लगभग एक समान होता हैं। अर्थात् इनके प्रोटीन व ऊर्जा में अंतर बहुत अधिक नहीं होता हैं। इन सभी अनाज में प्रोटीन तो 10-12 प्रतिशत होता हैं। परन्तु स्टार्च की मात्रा अधिक होने के कारण ऊर्जा अधिक मिल पाती हैं। दाने बनाते समय उपलब्धता तथा मूल्य के अनुसार कोई भी अनाज दाने में मिलाने के लिए चुना जा सकता हैं।

खल :– प्रोटीन की आवश्कयता खल (मूंगफली, बिनौला, सरसों, सूरजमुखी, सोयाबीन आदि) द्वारा पूरी की जाती हैं। इन सभी प्रकार की खल में 35- 50 प्रतिशत तक प्रोटीन होने के अतिरिक्त ये स्वाद भी प्रदान करती हैं। तिलहन में से तेल किस प्रक्रिया द्वारा निकाला गया है, उस पर उस खल की ऊर्जा निर्भर करती हैं। जैसे कि एक्सपेलैर द्वारा बनी खल में तेल की मात्रा सोल्वेंट द्वारा एक्सट्रैक्शन की अपेक्षा, अधिक तेल होने के कारण ऊर्जा की मात्राा अपेक्षाऔत अधिक होती हैं। परन्तु प्रोटीन की मात्रा तुलनात्मक कम होती हैं।

खल के अतिरिक्त दलहनों की चुन्नियां अर्थात छिलके मक्का ग्लूटन व डिस्टीलरी के ड्राई अनाज भी प्रोटीन पूरक के रूप में प्रयोग किए जाते हैं।

कृषि **उत्पाद :–** दाने में गेहूँ का चौकर, धान का चौकर, धान की पालिश, मक्का के उत्पाद आदि डाले जाते हैं, इससे पशुओं को प्रोटीन व ऊर्जा पोषक तत्व तो मिलते ही हैं साथ ही फास्फोरस तथा अन्य खनिज भी अच्छी मात्रा में उपलब्ध हो पाते हैं। चौकर में साबुत अनाज की अपेक्षा प्रोटीन की मात्रा अधिक होती है पर ऊर्जा कम होती हैं। दाने में इनके प्रयोग से लागत कम हो जाती हैं। दलहनी अथवा फलीदार फसलों के भूसा में प्रोटीन अनाज के भूसो से अधिक तो होता ही है साथ ही खनिज तत्व कैल्शियम व मैग्निशियम भी प्रचुर मात्रा में होते हैं। इसके अतिरिक्त पाचकता भी अधिक होती है और पशु खाते भी स्वाद और चाव से हैं।

अन्य पदार्थ जैसे कि अनाज, चना, धान विभिन्न फलियों का बाहरी छिलका भी प्रयोग किया जाता हैं। ये आहार को फैलावट तो देंगे पर पोषक मान बहुत अधिक नहीं होता हैं।

खनिज तत्व :– शरीर के लिए खनिज तत्व अत्यन्त आवश्यक हैं। अन्य पोषक तत्वों की अपेक्षा आहार में इनकी मात्रा भी कम होती है और शरीर में इनकी आवश्यकताएं भी कम ही होती हैं। कुछ मुख्य खनिज तत्व जैसे कि कैल्शियम (100 मि.ग्रा. प्रति कि.ग्रा. से अधिक) फासफोरस, सोडियम, पोटाशियम, गन्धक, क्लोराइड व मैगनीशियम आहार में थोड़ी मात्रा में तथा कुछ अन्य विरल तत्व जैसे कि तांबा, लोहा, कोबाल्ट, जिंक, फ्लोरिन, आयोडिन, मैगनीज, सैलीनियम आदि बहुत सूक्ष्म मात्रा (100 मिलीग्राम प्रति किलो ग्राम से कम) में आवश्यक। ये शरीर में अस्थियां व उत्तको की रचना, शरीर के विभिन्न द्रवों में उचित दाब बनाने, अम्ल व क्षार के सन्तुलन, शारीरिक क्रियाओं में को एन्जाइम के रूप अथवा तन्त्रिका तन्त्र, प्रजन्न तन्त्र पाचन तंत्र व रक्त संचार आदि सभी क्रियाओं के लिए आवश्यक है और विशेष बात यह है कि इनमें परस्पर सम्बन्ध होने के कारण इनकी मात्रा में पर्याप्त संतुलन अथवा अनुपात भी आवश्यक है क्योंकि समान पोषक तत्वों में एक की अधिकता का दूसरे की जैविक उपलब्धता पर प्रतिकूल प्रभाव हो सकता हैं। जिसके कारण पशुओं के स्वास्थ्य तथा उत्पादन प्रभावित होते हैं। इसलिए यह अत्यन्त जरूरी है कि मात्रा के साथ-साथ उनके अनुपात का भी उचित ध्यान रखा जाएं। अच्छे मार्का के खनिज तत्व बनाते हुए इन सब बातों का ध्यान रखा जाता हैं।

हरा चारे के परिपक्व होने के फलस्वरूप उसकी पाचकता कम होती जाती है। जबकि दाने में अवयवों की पाचकता लगभग स्थिर होती हैं।

दाना खिलाने के लाभ :–

1. थोडी मात्रा में खिलाने अधिक पोशक तत्व उपलब्ध।
2. पंसदीदा व पाचकता अधिक।

दोष :–

1. मंहगा
2. जल्दी पचकर अम्लता लाते हैं। जिससे रेशा पचाने वाले जीवाणु पर बुरा प्रभाव पड़ता हैं।

हरा चारा

इस श्रेणी में खेत में बोए गए चारे व चारागाह दोनो सम्मिलित हैं। हरा चारा, दलहनी व अदलहनी दो प्रकार का होता है (पोषक मान तालिका में है)

दलहनी चारे में हमारे देश में खरीफ के मौसम में सेंजी, लोबिया, ग्वार तथा रबी फसल में बरसीम तथा लूसर्न उगाए जाते हैं। इनकी विशेषता है कि इनमें प्रोटीन 15 प्रतिशत से अधिक होता है, कैल्शियम (1.5 – 2 प्रतिशत) व कुछ हारमोन जैसे तत्व होते हैं जो भार वृद्धि व दुग्ध उत्पादन बढ़ाते हैं। परन्तु इनमें सेपोनिन (Saponin) होने के कारण अधिक मात्रा में खिलाने पर आरम्भ में अफारा होने की संभावना रहती हैं। अदलहनी चारा जैसे कि ज्वार, बाजरा, मक्का, मकसरी, खरीफ के मौसम में बोए जाने वाले चारे हैं। जबकि जई रबी की फसल हैं। इसके अतिरिक्त कई घास नेपीयर, सूडान, पैरा घास आदि भी खिलाई जाती हैं।

जिस सीजन में हरा चारा अधिक मात्रा में उपलब्ध हो तो उसे ''साईलेज" अथवा ''हे" बनाकर सुरक्षित रखा जा सकता हैं। यह हरे चारे की कमी के समय उसका एक अच्छा विकल्प हो सकता है, क्योंकि इसकी गुणवत्ता भी बनी रहती है तथा उसकी पाचकता प्रतिशत भी हरे चारे के लगभग बराबर रहती हैं। हरे चारे के अतिरिक्त सूखे चारों तथा कई अन्य विकल्प है जो प्रयोग किए जाते हैं, तालिका में दिया गया हैं।

विभिन्न प्रकार के चारों की किस्में।

बाजरा :– (हंपदज बाजरा, राजस्थान बाजरा चारी 2, AVKB 11, Raj 171, JBV-2)

ग्वार :– बुन्देल ग्वार–1, बुन्देल ग्वार–3, ग्वार–30, HIG 356

जौ :– आर. डी. 2715, आर. डी. 2522, बी. एच. 75, इसके अलावा सैन्चरस घास, दानीनाथ घास भी गोचर भूमि में लगायी जा सकती हैं।

ज्वार :– हर सोना 855, सफेद मोती, जी एफ एस, सी एस एच 20

लूर्सन :– आर. आई. 88, आनन्द 2, आनन्द 1 व आनन्द 3

तालिका :– सूखे चारे की रसायनिक संरचना व पोषक मान

तत्व	कच्चा प्रोटीन	रेशा	एन. एफ.ई.	वसा	पाच्य प्रोटीन	कुल पाच्य तत्व	कुल खनिज	कैल्शियम	फास्फोरस
बाजरा कड़बी	3.1	40.4	48.5	1.1	0.9	53.4	6.7	0.9	0.3
बिनौला का भूसा	6.6	44.5	43.6	1.3	0.3	39.8	3.3	.	.
चना भूसा	6.4	33.7	41.6	3.3	2.4	37.0	14.7	.	.
मक्का का गुल्ला	4.4	28.6	58.1	0.7	0.1	41.0	7.6	0.8	0.4
धान का छिलका	4.6	37.8	41.2	0.7	.	.	15.5	0.6	0.3
रागी भूसा	3.6	35.9	51.3	0.9	0.2	55.6	8.1	0.7	0.1
धान का भूसा	2.4	36.4	43.7	0.8		41.6	16.4	0.2	0.1
ज्वार कड़बी	3.8	30.4	55.4	1.7	1.1	56.4	8.5	0.5	0.2
गन्ने की खोई	3.2	39.2	52.3	0.9	.	.	4.4	.	.
गेंहू का भूसा	3.8	37.5	46.5	0.5		42.2	11.3	0.8	0.1
सूरजमुखी का भूसा	2.8	31.0	52.2	2.0	.	.	12.0	0.4	0.1
सूरजमुखी	7.2	16.6	62.7	2.90	.	.	10.6	1.4	0.1
सूरजमुखी	11	23.9	45.2	3.44	8.5	52.5	15.3	.	.
गन्ने का अगोला	5.4	37.1	49.7	1.48		46.3	6.0	0.4	0.2

राशन कैसे बनाएं :–

इसके लिए पहले शरीर भार व दूध उत्पादन के अनुसार प्रोटीन तथा कुल पाचक तत्व की आवश्यकता फीडिंग स्टैण्र्ड के अनुसार निर्धारित करें। शारीरिक भार के अनुसार देखें कि कितना शुष्क पदार्थ दे सकते हैं। हरा चारा चूंकि एक सस्ता विकल्प है अतः हरे चारे से शुरूआत करें, देखें कि यदि कुल शुष्क पदार्थ की आवश्यकता केवल हरे चारे द्वारा पूरी की जाए तो प्रोटीन व कुल पाचक तत्वों की कितनी मात्रा उपलब्ध होगी। उससे कितनी आवश्यकताएं पूरी हो सकती हैं, उसके अनुसार दाना की मात्रा तय करें। कुल प्रोटीन व पाचक तत्वों की कितनी मात्रा उपलब्ध है यह जानने के लिए आहार के विभिन्न अव्यवों की रासायनिक संरचना देखें। यदि आवश्यकताएं पूरी न हो रही हो तो दाना मिलाकर पूरी करें। कुल शुष्क पदार्थ में से दाना की मात्रा घटा कर हरा चारा दें। यदि घटिया क्वालिटी के चारें हो तो अधिक प्रोटीन वाला दाना दें। जब दलहनी चारा दिया जा रहा हो तो कम प्रोटीन वाला दाना (अर्थात खल की मात्रा कम) अथवा कम मात्रा में दे।

यदि हरा चारा कम मात्रा में उपलब्ध हो तो सूखा भूसा दें। कुल चारे का 1/3 और दाना बढ़ा दें। परन्तु कोशिश करें भूसा दुधारू पशुओं को कम मात्रा में दें या न दें। इसे शुष्क काल में गायों के राशन में देना ठीक हैं। यदि हरा चारा दलहनी तथा अदलहनी दोनों प्रकार का उपलब्ध हो तो, दोनों को मिलाकर (50:50) के अनुपात दें। परंतु कौन सा व कितना चारा देना है यह हरे चारें में उपलब्धता अनुसार कम अथवा ज्यादा किया जा सकता हैं।

पूर्ण मिश्रित आहार एक बेहतर विकल्प :–

जैसा कि पहले बताया गया है कि दुधारू पशुओं के लिए आहार संतुलित होना चाहिए जिसमें हरा चारा तथा दाना मुख्य अवयव हैं। अक्सर देखा गया है कि विभिन्न खाद्य पदार्थ अर्थात् दाना, हरा और सूखा चारा अलग-अलग तथा अलग-अलग समय पर खिलाया जाता है या इन्हें मिलाकर दिया जाता हैं। इस प्रकार मिलाकर देने से पशु अपनी इच्छानुसार उसमें से पसन्द के अनुसार कुछ हिस्सा चुन-चुन कर खा लेते हैं। जिसके कारण बारीक-बारीक पदार्थ नीचे रह जाता है और हरे या सूखे चारे के भी अधिक मोटे व अधिक रेशेदार टुकड़े अलग हो जाते हैं, वह पशु नाद में छोड़ देता है जिससे कुछ भाग झूटन के रूप में नष्ट हो जाता है और साथ ही कुल राशन का प्रोटीन व ऊर्जा का अनुपात भी बिगड़ जाता हैं।

यदि आहार में इन दोनों का सही सांमजस्य न हो तो पाचकता प्रभावित होती है और पोषक तत्व अवशोषित नहीं हो पाते हैं। इस समस्या से बचने के लिए आहार के विभिन्न अवयवों को उचित अनुपात में एक साथ मिलाकर खिलाना चाहिए, इससे तैयार राशन को पूर्ण मिश्रित आहार कहा जाता हैं। इस तकनीक में दूध उत्पादन के अनुसार विभिन्न खाद्य पदार्थ दाना, हरा चारा, सूखा चारा आवश्यकतानुसार मात्रा में लेकर दरदरा पीस लिए जाते हैं। अतः इस राशन में यदि सस्ते कृषि उत्पाद आदि भी प्रयोग करके, कम लागत में अपेक्षाकृत अधिक गुणवत्ता का आहार उपलब्ध हो सकता हैं।

इस तकनीक के मुख्य लाभ हैं :–

1. आवश्यकतानुसार विभिन्न अवयव मिलाने के कारण पशु को संतुलित आहार निरन्तर मिलता हैं।
2. आहार में सभी अवयवों के कण क्योंकि एक सार किए जाते हैं, जिससे पशु की चुनकर खाने की प्रवृति पर रोक लगती हैं जिससे आहार का अपव्यय कम होता हैं।
3. आहार के कणों का साईज ऐसा रखा जा सकता है कि उसकी पाचकता बढ़ जाती हैं।
4. इसमें कृषि उत्पाद 'हे' (सूखा हरा चारा) आदि मिलाए जा सकते हैं जिससे हरे चारे की कमी में यह एक अच्छा विकल्प हैं।
5. विशेषकर नई ब्यायी हुई गाय पशुओं के लिए यह काफी उपयुक्त है क्योंकि तब उनकी सूक्ष्म तत्वों की अथवा ऊर्जा/वसा आदि की मात्रा की अधिक चाहिए, वह इसमें डाली जा सकती है।।

6 डेरी पशुओं की जनन समस्याऐं व बचाव

जनन क्षमता के आंकलन के लिए जरूरी है कि की पशुओं के ब्याने, गाभिन होने, गर्मी में आने तथा अन्य बातों का पूरा रिकार्ड रखा जाये। रिकार्ड के अभाव में जनन क्षमता का आंकलन मुश्किल हो जाता हैं। भैसों में गर्मी के लक्षण पहचानना बहुत जरूरी होता हैं। गर्मी के लक्षण पहचान में न आने के कारण पशु नये दूध नहीं हो पाती है जिससे उसका ब्यांत अंतराल बढ़ता रहता हैं। यदि पशु तीन बार से अधिक गाभिन कराने पर गाभिन नहीं हो पाता है तो उसकी एक बार डाक्टर से जांच करा लेनी चाहिए। गाय पशुओं का ठीक समय पर गाभिन न होना एक आम समस्या हैं। परन्तु प्रत्येक पशुपालक की यह इच्छा रहती है कि उसकी पशु हर साल बच्चा दे, जिससे उसे लगातार दूध मिलता रहे। परन्तु किसान भाई इस समस्या से परेशान रहते हैं कि उनकी पशु दो साल में केवल एक बच्चा देती हैं। पशु में दो ब्यांत के बीच अधिकतम् 13-14 महीने का अंतर होना चाहिए। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि ब्याने के बाद पशु दोबारा बच्चा 400 दिन के अंदर दे, तभी पशुपालन फायदेमंद हैं। एक अनुमान के अनुसार यदि पशुओं का ब्यांत का अंतर एक दिन बढ़ जाता है तो किसान को रोजाना लगभग 100 रुपये का नुकसान होता हैं। ब्यांत अंतराल 13-14 महीने रहने पर पशुओं अपने जीवनकाल में अधिक बच्चे देगी और अधिकतर समय दूध उत्पादन में भी रहेगी। मादा पशु की जनन क्षमता इसी से परखी जाती है कि उसके दो ब्यांत के बीच कितना अंतर हैं। दो ब्यांत के बीच का अंतराल दो प्रमुख भागों में बांटा जा सकता हैं। पहला प्रसव से गाभिन होने तक का समय तथा दूसरा गाभिन होने से लेकर बच्चा देने तक का समय जो कि निश्चित रहता हैं। इस दूसरे अतंराल को गर्भकाल कहते हैं। पशुओं में यह 310 दिन होता हैं। अतः हम कह सकते हैं कि यदि पशु बच्चा देने के बाद 90 दिन के अंदर गाभिन हो जाये तभी 310 दिन गर्भकाल को जोड़कर, अगला बच्चा उससे 400 दिन के अतंराल पर प्राप्त किया जा सकता हैं। इसलिए बच्चा देने से गाभिन होने तक का समय ही हमारे लिए सबसे ज्यादा मायने रखता है। इसी को नियंत्रित करके हम हर साल बच्चा ले सकते हैं। पशु यदि प्रसव के बाद अधिकतम् 100 दिन के अंदर गाभिन हो जाती है तो गर्भकाल 310 दिन के बाद दोबारा बच्चा लगभग 400 दिन में देगी। यदि वह प्रसव के बाद 200 दिन में गाभिन होती है तो दोबारा बच्चा प्राप्त करने में 500 दिन से अधिक समय लगेगा तथा यदि प्रसव के बाद 300 दिन में पशु गाभिन होती है तो दोबारा बच्चा 600 दिन में मिलेगा। इस तरह से हम कह सकते हैं कि बच्चा देने से गाभिन होने का समय ही खास है और इसी को नियंत्रित करके हम हर साल बच्चा ले सकते हैं।

प्रसव से गाभिन होने का समय मुख्य रूप से तीन बातों द्वारा प्रभावित होता हैं :-

पहला :- पशुओं को दिया जाने वाला आहार।

दूसरा :- पशुओं का मौसम अनुकूल आवास।

तीसरा :- प्रसव के बाद प्रजनन के लिए पशुओं की देखभाल।

संक्षेप में कह सकते हैं कि पशुओं को संतुलित आहार खिलायें, आरामदायक बाड़ा बनायें, प्रसूतिकालीन रोगों से बचायें तथा गर्मी के लक्षण पहचानने की कला में महारथ हासिल करें। क्योंकि, गर्मी के लक्षणों की पहचान ही पशुओं के सफल प्रजनन की कुंजी हैं। ब्याने के 50 दिन बाद पशुओं में गर्मी के लक्षण देखना शुरू कर दें। यदि पशु 75 दिन तक गर्मी में नहीं आती है तो पशुचिकित्सक को दिखा लें।

गर्भ और प्रसव काल के समय जानवरों की देखभाल

गर्भकाल का समय ऐसा समय होता हैं जब माँ को अपने शरीर के साथ-साथ अपने शरीर में बढ़ रहे बच्चे का भी पूरा-पूरा पालन-पोषण करना पड़ता हैं। अतः ऐसे समय गाभिन पशुओं की देखभाल एवं दाना-पानी की आवश्यकता होती हैं और ये सुनिश्चित करने के लिए कि पैदा होने वाला बच्चा स्वस्थ हो तथा गर्भावस्था के दौरान गाभिन पशु को किसी प्रकार की परेशानी न हो पाये, इस हेतु निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए।

गाभिन पशुओं को ब्याने से दो महीने पहले से ज्यादा खिलाना चाहिए तथा उससे मेहनत का काम नहीं लेना चाहिए। गर्भावस्था के दौरान गाभिन पशुओं को हरे चारे के मैदान में चरने के लिए ले जाना चाहिए लेकिन ब्याने से एक-दो सप्ताह पूर्व जानवरों को मैदान में चरने के लिए भेंजे तो उस समय उनको अन्य जानवरों से दूर बांधना चाहिए तथा विशेष रूप से ऐसे जानवरों से दूर रखना चाहिए, जिसका एक या अनेक बार गर्भपात हो चुका हो।

पशुओं को गाभिन कराने की तिथि का एक लेखा-जोखा रखना चाहिए इससे गाभिन पशु के ब्याने का समय का अंदाजा रहता हैं। गाय का गर्भकाल 282 दिन का या 9 महीने का तथा भैंस का लगभग 310 दिन का होता हैं।

जब ब्याने का समय नजदीक आ जाये तो ऐसे जानवरों को अलग बांधना चाहिए तथा ऐसे पशुओं की सावधानी से देख-रेख करनी चाहिए।

वैसे तो गाभिन पशु की गर्भावस्था जैसे-जैसे बढ़ती जाती हैं उनका पेट फूलने लगता हैं तथा दूर से देखकर ही इस बात का अन्दाजा लगाया जा सकता हैं कि जानवर ब्याने वाली हैं लेकिन फिर भी ब्याने के कुछ दिन पहले से ब्याने वाले पशुओं में निम्न लक्षण देखने को मिलते हैं :-

1 गाभिन पशु का पेट बिल्कुल फूलकर नीचे की तरफ लटक जाता हैं तथा अयन बढ़ जाता हैं और फूल जाता है। उसके थन फूल जाते है तथा कभी-कभी उसमें से दूध भी निकलने लगता हैं।

2 गाभिन पशु के जननेद्रिय के चारों तरफ तथा पूंछ के चारों तरफ का भाग फूल जाता है तथा फूलकर ढीला पड़कर लटक जाता हैं।

उपरोक्त लक्षण देखते ही यह समझ लेना चाहिए कि जानवर के ब्याने का समय नजदीक आ गया हैं। ऐसे समय जानवरों को साफ-सुथरी आरामदेह और शान्त जगह में रखना चाहिए तथा समय-समय पर उसकी निगरानी करते रहना चाहिए। निगरानी करने वाले को यदि पशु के ब्यान में कोई भी परेशानी हो रही हो तो तुरन्त नजदीक के पशु चिकित्सक को सूचित करना चाहिए तथा उसकी सलाह के अनुसार कार्य करना चाहिए। जैसे-जैसे प्रसव काल नजदीक आता जाता हैं मादा का शरीर भारी होता जाता हैं। आमतौर पर प्रसव वेदना शुरू होने के 3-4 घंटे बाद माता बच्चे को जन्म देती हैं। लेकिन पहली बार ब्याने वाली मादा में यह समय 12 घंटे तक भी रह सकता हैं। ब्याने के कुछ समय बाद ही यदि गाय स्वस्थ है तो जेर बाहर आ जाती है। जेर के बाहर आने का समय सामान्यतः 4-6 घंटे होता है लेकिन किसी-किसी जानवर में यह समय 10-20 घंटे तक भी होता हैं। यदि जेर 24 घंटे में भी नहीं आ पाती है तो इसकी सूचना तुरन्त पशु चिकित्सक को देनी चाहिए तथा उसी की सलाह के अनुसार दवा करनी चाहिए या जेर निकलवाना चाहिए। बहुत से किसान भाई गांव के ही किसी आदमी से या स्वयं ही जेर निकालने का प्रयत्न करते हैं इसमें कभी-कभी बहुत खून निकल जाता है तथा जानवर के स्वास्थ्य के लिए इससे खतरा उत्पन्न हो जाता है या जानवर के जनेनन्द्रिय में चोट भी आ जाती है अतः ऐसा नहीं करना चाहिए। जेर रूकने के कई कारण हो सकते हैं जैसे गर्भपात होना, मादा कमजोर या बूढ़ा हो, ब्याने के तुरन्त बाद ठण्डा पानी पिला दिया हो या जेर गिरने से पहले ही जानवर को दुह लिया गया हो।

ब्याने के बाद जानवर की देखभाल

ब्याने के बाद माँ तथा बच्चे की बहुत सावधानी करनी चाहिए। पशु को अच्छे नर्म तथा आरामदायक जगंह पर रखना चाहिए। जानवरों को रखने की जगह पूरी साफ-सुथरी तथा हवादार होनी चाहिए। ऐसे जानवरों को अन्य जानवरों के बाड़े से अलग रखना चाहिए। जो जानवर पहला बच्चा देता हैं उसको दुहने में पूरी सावधानी बरतनी चाहिए तथा यह भी देखना चाहिए कि उसके थनों में किसी प्रकार की रूकावट न रहने पाये। गाय को ब्याने के एक दो सप्ताह तक अच्छा हरा चारा खिलाना चाहिए। एक दो सप्ताह तक जानवर को एक किलो गुड़ भी देना चाहिए। एक सप्ताह बाद जानवर को बढ़िया हरा चारा जैसे बरसीम, मक्का, ज्वार या जई आदि भी खिलानी चाहिए। इन्हें जो भी आहार दिया जाये बढ़िया किस्म का होना चाहिए तथा उसमें 16 से 18 प्रतिशत तक प्रोटीन की मात्रा होनी चाहिए, कम न हो। हरे चारे के साथ-साथ दाने की मात्रा भी होनी चाहिए। इसके अलावा उसमें एक छटांक खनिज मिश्रण और नमक भी मिला देना चाहिए।

ब्याने के बाद बहुत से जानवरों का दूध सूख जाता है, खाना पीना छोड़ देते हैं, सुस्त हो जाते हैं, इस प्रकार के कोई लक्षण देखते ही पास के पशु चिकित्सक से सलाह लेनी चाहिए तथा दवा करानी चाहिए। ब्याने के थोड़े समय पहले तथा बाद का समय माँ तथा बच्चे के स्वास्थ्य के लिए व दूध उत्पादन की दृष्टि से बहुत ही महत्वपूर्ण हैं। अतः गाभिन पशुओं की देखभाल ब्याने के पूर्व व बाद में भी बहुत ही सावधानी से करनी चाहिए। इससे जानवर स्वस्थ रहेगा, दूध का उत्पादन अधिक होगा व पैदा हुआ बच्चा भी स्वस्थ रहेगा।

दो ब्यांत के बीच का अन्तर

पशुपालन तभी फायदेमन्द होता हैं जब पशु की उत्पादन क्षमता का पूरा-पूरा फायदा उठाया जाये। उदाहरण के लिए यदि आपके पास गाय या भैंस हैं तथा उससे अधिक से अधिक फायदा लेना हैं तो चाहिए कि गाय या भैंस प्रायः हर समय या अधिक समय तक दूध देती रहे, ऐसा फायदा लेने के लिए चाहिए कि गाय प्रत्येक साल ब्याती रहे। इसके लिए ब्याने के 3 माह बाद इसको सांड से मिलवाना चाहिए या कृत्रिम गर्भाधान करवाना चाहिए। प्रायः गांवों में ऐसा होता है कि जब गाय या भैंस ब्याने के 12-13 महीने बाद दूध देना बन्द करती हैं तब पशुपालक उसे फिर गाभिन कराते हैं इससे दो ब्यातों के बीच का अन्तर बहुत अधिक बढ़ जाता हैं तथा इसकी उत्पादन क्षमता बहुत कम हो जाती हैं। यदि गाय कम दूध देने वाली न हो तो उसे सालभर से पहले नहीं ब्याने देना चाहिए तथा यदि बहुत ज्यादा दूध वाली गाय भैंस हो तो भी उसके दो ब्यातों के बीच का अन्तर 13-14 माह का होना चाहिए। यहां पर एक बात और ध्यान रखनी चाहिए कि गाय या भैंस को ब्याने से लगभग 6 से 8 सप्ताह पहले दुहना बन्द कर देना चाहिए। यहां पर किसान भाई यह भी सवाल उठा सकते हैं कि जब ब्याने के एक-दो दिन पहले तक गाय दूध दे रही हो तो उससे 6-8 सप्ताह पहले ही क्यों दूध दुहना बन्द कर देना चाहिए? इसका कारण यह हैं कि यदि ऐसा नहीं किया गया तो अगली ब्यात में दूध की मात्रा कम हो जाती हैं। बहुत-सी गायें तो ब्याने में कुछ दिन पहले स्वयं ही दूध देना बन्द कर देती हैं लेकिन कुछ गायें स्वयं ही दूध देना बन्द नहीं करती हैं उनका धीरे-धीरे बन्द करना चाहिए। एक साथ या अचानक बन्द नहीं करना चाहिए। जब ऐसी गायें दूध देना बन्द कर दे तो उसकी खुराक बढ़ा देनी चाहिए और ऐसे जानवरों को खूब खिलाना-पिलाना चाहिए जिससे ब्याने तक जानवर खूब स्वस्थ हो जाये और अगली ब्यात में उससे अधिक दूध निकालने की संभावना बनी रहती हैं।

प्रसवकाल से संबंधित कुछ अन्य विशेष बातें

गाय/भैंसो में ब्याने के लक्षण :- पशु के ब्याने के लगभग 8-24 घंटे पहले कई प्रकार के लक्षण दिखायी देने लगते है। जैसे :-

1. पशु दर्द होने के कारण बार-बार उठता बैठता हैं।
2. गोबर पतला करता हैं तथा बार-बार पेशाब करता हैं।
3. थन-अयन दूध से फूल जाता हैं।
4. पशु शान्त तथा एकान्त वातावरण चाहने लगता हैं।
5. चारा खाना कम या बिल्कुल बंद कर देते हैं।
6. पुटठे नीचे ढल जाते हैं और पूंछ के पास दोनों ओर गड्डे पड़ जाते हैं तथा योनि मार्ग से सफेद पदार्थ निकलने लगता हैं।

इस समय निम्न सावधानियां प्रयोग करनी चाहिये।

1. ब्याने वाले पशु को बाकी पशुओं से अलग कर दें, इससे पशु जल्दी ब्यायेगा।
2. फर्श पर रेत / पुआल आदि बिछा दें जिससे बच्चे को चोट आदि न लगे और पशु आराम महसूस करें।
3. ब्याने से पहले तथा बाद में गर्म चोकर का दलिया दें।
4. ब्याने की पूरी प्रक्रिया सामान्य रूप से होने दें, अगर अधिक परशानी हो तो पशु चिकित्सक को बुलाये।
5. गाय/भैंस ब्याने के 5-6 घंटे के अन्दर जेर डाल दे अन्यथा डाक्टर की सलाह लें।
6. आवश्यकतानुसार प्रसव में अनुभवी आदमी की सहायता लें।

ब्याने के बाद गाय व भैंसों की देखभाल सम्बन्धी कुछ अन्य बातें

1. ब्याते समय गाय, भैंस का पिछला भाग गंदा हो जाता हैं अतः ब्याने के बाद इसे गर्म पानी में कपड़ा भिगोकर अच्छी तरह साफ कर दें। पानी में डिटोल, सेवलोन, आदि मिला सकते हैं। साफ करने के बाद पशु को सूखी जगह पर बांध दें।
2. पशु को पिलाने के लिए गुनगुना पानी दें। पानी में अजवायन/अर्गट मिलाकर दिये जाने से पेट की अच्छी तरह सफाई हो जाती हैं। ठंडा पानी पिलाने से जेर डालने में कठिनाई होती हैं।
3. अधिक दूध देने वाली पशु की खीस तीन-चार बार निकालें अन्यथा मिल्क फीवर का खतरा हो जाता हैं।
4. पशु को मुलायम हरा चारा देना चाहिये, ब्याने से पहले 300 ग्राम सरसों का तेल देना चाहिये इससे पेट साफ हो जाता हैं। ब्याने के बाद निम्न पदार्थ देना चाहिएः-

क्र. संख्या	पदार्थ	मात्रा
1.	गुड़	500 ग्राम
2.	अजवायन	100 ग्राम
3.	सौंफ	50 ग्राम
4.	मेथी	100 ग्राम
5.	काला नमक	100 ग्राम
6.	सोंठ	50 ग्राम
इसे 1.5 लिटर पानी में उबाल कर सुबह शाम पिलाये। इसमें खीस भी मिलायी जा सकती हैं।		

5. इसके अलावा चोकर 500 ग्राम + गुड़, 500 ग्राम + अजवायन, 50 ग्राम खिलायें। धीरे-धीरे चोकर की मात्रा बढ़ायें और एक हफ्ते बाद चूरी, चोकर और खली मिलाना शुरू कर दें।

6. 15-20 दिन बाद दाना दूध के उत्पादन के अनुसार शुरू कर दें।

जनन समस्यायें

पशुओं की चार प्रमुख जनन समस्यायें हैं

- झोटी/ओसर का देर से जवान होना।
- पशु का बार बार फिरना।
- पशु का गर्मी में न आना।
- पशु का पाछा दिखाना या फूल दिखाना / गर्भाशय का बाहर निकलना ।

कुछ कटड़ियां 4-5 साल की होने पर भी गर्मी में नहीं आती और किसान बगैर लाभ के उसे पालता रहता है। इसके विपरीत इस उम्र की अच्छी नस्ल की गाय दो बार बच्चे दे चुकी होती है और साथ में दो ब्यांत का दूध भी। कटड़ी के जवान होने की उम्र मुख्य रूप से उसके खान-पान पर निर्भर करती है। एक कहावत है :- आज की कटड़ी कल की होने वाली पशु है। जन्म से ही कटड़ी की ठीक प्रकार से देखभाल करने पर ही भविष्य में वह एक अच्छी पशु बन सकती है। कटड़ी को जन्म से ही यदि संतुलित आहार और हरा चारा दिया जाये तो समय पर उनका वजन पूरा होकर वह सही उम्र में गर्मी में आ जाती है। कटड़ियों को उम्र की बजाय वजन के अनुसार गाभिन कराया जाता है। प्रथम गर्भाधान के समय कटड़ी का वजन लगभग 300 कि0 ग्रा0 होना चाहिए। अच्छी खुराक देने पर यह वजन आमतौर पर ढाई साल में आ जाता है। छोटी कटड़ियों को रोजाना 15-20 ग्राम खनिज लवण मिश्रण भी खुराक में मिलाकर देना चाहिए। कटड़ियों को जन्म से ही परजीवियों से बचाना चाहिए व समय-समय पर आवश्यक बीमारी रोधक टीके भी लगवाने चाहिए। कटड़ियों को यदि संतुलित आहार, हरा चारा और खनिज लवण मिश्रण की पूरी उपलब्धता रहे तो वे निश्चित रूप से अपना वजन समय पर पूरा कर लेती हैं तथा गाभिन हो जाती है। यदि कुछ कटड़ियां वजन पूरा होने पर भी गर्मी में नहीं आईं हैं तो उनकी जांच पशु चिकित्सक से करा लेनी चाहिए।

पशुओं का गर्मी में न आना

भैंसों के गर्मी में नहीं आने के दो संम्भावित कारण होते हैं प्रथम पशु वास्तव में गर्मी में नहीं आते वास्तविक अमद काल द्वितीय पशु तो गर्मी में आती है, परन्तु किसान की उपेक्षा के कारण या गर्मी के लक्षणों की कम तीव्रता के कारण, गर्मी की पहचान नहीं हो पाती है शांत अमद काल।

वास्तविक अमदकाल : पशुपालन एक लाभप्रद व्यवसाय तभी हो सकता है जब पशु के दो ब्यांत के बीच का अन्तर लगभग 12-13 महीने हो। इसके लिए जरूरी है कि पशु ब्याने के 2-3 महीने के अन्दर गर्मी में आकर

पुनः गर्भ धारण कर ले। लेकिन इस दौरान पशु के शरीर की ऊर्जा की अपेक्षाकृत अधिक आवश्यकता होती है क्योंकि उसे अपने शरीर के रखरखाव से अतिरिक्त दुग्ध उत्पादन पर भी ऊर्जा खर्च करनी पड़ती है। यदि इस अवस्था में पोषण की मात्रा या गुणवत्ता में कोई कमी आ जाती है तो पशु का ऊर्जा संतुलन बिगड़कर ऋणात्मक स्थिति में जाने लगता है जिसका सबसे अहम असर उसके जनन पर पड़ता है। भैंस जब तक ऋणात्मक ऊर्जा संतुलन में रहती है, वह ताव में नहीं आती और न ही गाभिन हो पाती है। इस प्रकार अधिक दूध उत्पादन व कम पोषक आहार, शारीरिक रोग अथवा वातावरण के अधिक तापमान के कारण भैंसो में मद बंद हो जाता है तथा वे गर्मी में नहीं आती हैं। इस समस्या के निवारण के लिये पशुओं को संतुलित आहार दें, जिसमें दाने की मात्रा अधिक हो। पशुओं को हरा चारा खिलायें। पशुओं को रोजाना 40-50 ग्राम खनिज लवण मिश्रण दें। शारीरिक रोग के लिए पशु चिकित्सक से सम्पर्क करें। गर्मियों के दिनों में पशुओं को छायादार पेड़ के नीचे अथवा खुले छायादार एवं हवादार बाड़े में बांधें। पशुओं को कम से कम तीन बार ठण्डे पानी से नहलायें और ठण्डा पानी पिलायें। पशुओं को नदी अथवा तालाब में छोड़ दें। पशु को हरे चारे की उपलब्धता सुनिश्चित करें तथा चारा सुबह सवेरे तथा देर शाम को ठण्डक होने पर खिलायें। इन उपायों को करने पर पशु गर्मी में आ सकते है। इसके अतिरिक्त आवश्यकता पड़ने पर पशुओं के जनन अंगों की जांच भी पशु चिकित्सक द्वारा करा कर उचित उपचार भी करा लें।

शांत मदकाल, गूंगा आमाद्ध : भैंसों में गर्मी के लक्षण न दिखने का मुख्य कारण शांत मदकाल होना माना जाता है। इसमें पशु तो मद में आती है परन्तु गर्मी के लक्षणों की तीव्रता कम होने के कारण किसान या तो लक्षणों को पहचान नहीं पाते या इन पर ध्यान नहीं देते। किसान भाईयों को प्रत्येक पशुओं के पास जाकर अच्छी तरह से उसके व्यवहार को देखना चाहिए। पशुओं में गर्मी के लक्षणों की तीव्रता रात में अधिक होती है। इसलिए पशु पालकों को चाहिए की रात में सोने से पहले 9-10 बजे तथा सुबह सवेरे 5-6 बजे पशुओं के पास एक चक्कर अवश्य लगा लें। पशुओं का रम्भाना तथा योनिमार्ग से चमकीला पारदर्शी स्राव जो एक रस्सी की तरह लटक जाता है, गर्मी का स्पष्ट लक्षण माना जाता है। यह स्राव अक्सर पशुओं के बैठने के बाद योनिमार्ग से निकलता है जो पूंछ और उसके आसपास चिपक जाता है। कुछ भैंसों में किसान भाई डोका देखकर भी आने वाले ताव का अनुमान लगा लेते हैं।

गर्मी के लक्षणों का अवलोकन दिन में तीन-चार बार करना चाहिए तथा शंका होने पर पशु चिकित्सक से जांच करवानी चाहिए। पशु चिकित्सक ताव की सही पहचान कर सकते हैं तथा इस बात का भी पता कर सकते हैं कि क्या इस पशुओं में शांत मदकाल की कोई सम्भावना है या नहीं। पशुओं के गर्मी में होने पर दो बार वीर्य का टीका लगवाना चाहिए। इससे पशुओं के गर्भ ठहरने की सम्भावना बढ़ जाती है। यदि पशु रात में गर्मी में आई है तो टीका अगले दिन सुबह और शाम को लगवाना चाहिए और यदि सुबह गर्मी में आई है तो शाम और फिर अगले दिन सुबह लगवाना चाहिए।

पशुओं का बार-बार फिरना

रिपीट ब्रीडर पशु आमतौर पर हर 21-22 दिन बाद गर्मी में आती है और गाभिन कराने पर रूकती नहीं हैं। पशुओं के बार-बार फिरने के कई कारण हो सकते हैं। संक्षेप में कारण और उनका निवारण इस प्रकार हैं। पशुओं में गर्मी के लक्षणों को सुनिश्चित करें। कई बार पशु किसी दूसरे कारण से बोलती या रम्भाती हैं और किसान इसे गर्मी का लक्षण समझ कर गाभिन करा देते हैं। असमय गाभिन कराने पर पशु गाभिन नहीं रह सकती। संभव है कि झोटा ही नपुंसक अथवा कम जनन क्षमता वाला हो। इसका पता इस बात से चल सकता है कि उस झोटे से गर्भित होने वाली बाकी भैंसे गाभिन ठहरती हैं या नहीं। इसकी जांच कर लें। अधिकतर भैसें सर्दियों के मौसम में गर्मी में आती है, इससे झोटों पर अधिक दबाव रहता है। • एक ही झोटे से बार-बार गाभिन कराने पर पशु यदि गाभिन नहीं हो पा रही है तो अगली बार किसी दूसरे झोटे से गाभिन कराये। यदि कृत्रिम गर्भाधान कराने पर पशु फिरती है तो हो सकता है कि गर्भाधान सही समय पर नहीं किया गया है, गर्भाधान विधि उचित नहीं है या फिर हिमीकृत वीर्य की गुणवत्ता ठीक नहीं है। उसकी जांच करवाएं।

• कुछ भैंसों में हारमोनों के असंतुलन से अण्डा सही समय पर नहीं छुटता है। इससे निषेचन पश्चात यदि भ्रूण बनता भी है तो उसके जिंदा रहने की संभावना बहुत कम रहती है। गर्भाधान के बाद यदि भ्रूण 15 दिन के अंदर ही मर जाता है तो पशु 20-22 दिन बाद ठीक समय पर गर्मी में आती है। परन्तु यदि भ्रूण की मृत्यु गर्भधारण के 16 दिन पश्चात् होती है तो पशु पूरे 20-22 दिन से अधिक समय बाद गर्मी के लक्षण दिखाती है।

• पशुओं के गर्मी के लक्षणों के दौरान 12 घंटे के अंतराल पर दो बार अच्छे झोटे से या कृत्रिम विधि से गाभिन करायें। सुबह को गर्मी में आई पशुओं को शाम को और अगले दिन सुबह को तथा शाम को गर्मी में आई पशुओं को अगले दिन सुबह और शाम को गाभिन करायें। ताव में आई पशु के योनिद्वार से निकलने वाले पतले व चमकीले तार की अच्छी तरह से पड़ताल करें। यह तार शीशे/पानी की तरह साफ होनी चाहिए। यदि इसमें सफेदी दिखाई देती हो तो पशु चिकित्सक से जांच करवा कर उचित ईलाज करवाएं।

• गर्भाधान के बाद पशुओं को कम से कम दो हप्ते गर्मी से बचाकर रखें। उसे ठण्डे स्थान पर बांधें और खूब नहलायें। पशुओं को पर्याप्त मात्रा में हरा चारा तथा दाने में खनिज लवण मिश्रण दें। गर्भाधान के लगभग 20-22 वें दिन बाद पशुओं में गर्मी के लक्षणों की जांच अवश्य करें। ताकि पशुओं यदि ठहरी न हो तो उसे दोबारा गाभिन करवाने के लिए आवश्यक कार्यवाही की जा सके।

गर्भाधान के दो महीने बाद गर्भ जांच जरूर करवायें। अन्यथा कई बार पशुपालक अपनी पशुओं गाभिन समझते हैं व उसके जनन सम्बन्धी खबर नहीं रखते। महीनों इन्तजार करने पर भी जब पशु नहीं ब्याती तब जांच करवाने पर पता चलता है कि पशु तो गाभिन नहीं। इस कारण पैसा व समय दोनों की बरबादी होती है।

गर्भाशय का बाहर निकलना

भैंस का पाछा/फूल दिखाना बच्चा देने के आस-पास भैंसों की एक प्रमुख समस्या है योनि एवं बच्चेदानी का योनिद्वार से बाहर आ जाना। इसे फूल दिखाना, शरीर निकलना तथा योनि अपभ्रंश जैसे नामों से भी जाना जाता है। फूल दिखाने की समस्या गर्भावस्था के आखिरी महीनों से लेकर बच्चा देने के 2-3 महीने तक कभी भी हो सकती है।

1. बच्चा जनने से पहले
2. बच्चा जनने के दौरान
3. बच्चा जनने के कुछ दिनों बाद

बच्चा जनने से पहले गर्भाशय का बाहर निकलना : बच्चा जनने से पहले भैंसों में फूल दिखाने की समस्या आमतौर पर बच्चा जनने से पहले ही होती है तथा यह समस्या प्रसव के 15-60 दिन पहले शुरू हो जाती है। रोग की शुरूआत में यह पशु के बैठने पर छोटी गेंद जैसी दिखाई देती है। पशु के खड़ा होने पर यह अन्दर चली जाती है। धीरे -धीरे इसका आकार बढ़ता रहता है तथा इसमें मिट्टी, भूसा व कचरा चिपकने लगता है। इसके कारण प्शुओं को जलन होती है और वह पीछे की ओर जोर लगाने लगती है। जिस कारण से समस्या बढ़ती जाती है एवं और जटिल हो जाती है। कभी कभी तो कुत्ते और कौवे शरीर के बाहर निकल हुए भाग को नौंचने लगते हैं।

• पशुओं को ऐसी जगह बांधें, जो आगे से नीचा तथा पीछे से 2-6 इंच ऊंचा हो। इससे पेट का वजन बच्चेदानी/ योनि पर दवाब नहीं डाल पाता है।

• पशु को साफ-सुथरी जगह बांधें, जिससे निकले हुए भाग पर भूसा व गंदगी न लग सके। कुत्ते और कौवे ऐसे स्थान पर न जा सकें। अन्य पशु भी उससे दूर रहें। पशु को सूखा चारा, तूड़ी/भूसा न खिलायें। चारा हरा होना चाहिए तथा दाने में चोकर व दलिया प्रयोग करें। इस बात का विशेष ध्यान रखें कि पशु को कब्ज न होने पाए व गोबर पतला ही रहे।

• पशु के आहार में रोजाना 50-70 ग्राम कैल्शियम युक्त खनिज लवण मिश्रण अवश्य मिलायें। खनिज मिश्रण दवाई की दुकान पर अनेक नामों, एग्रीमिन, मिनीमिन, मिल्कमिन इत्यादिब्द्ध से मिलता हैं। खनिज लवण मिश्रण पर ISI मार्क लिखा होना चाहिये।

• शरीर निकलने पर योनि को साफ व ठण्डे पानी से धोएं, जिससे उस पर भूसा व मिट्टी न लगी रहे। पानी में लाल दवाई डाल सकते हैं। पानी में ऐसी कोई दवा न डालें जिससे योनि में जलन होने लगे। नाखून काटकर साफ हाथों से योनि को अंदर धकेल दें तथा नर्म रस्सी की ऐंड़ी बांध दें। ऐंडी बांधते समय यह ध्यान रखें कि यह अधिक कसी न हो तथा पेशाब करने के लिए 3-4 अंगुलियों जितनी जगह रहे।

• रोग की प्रारंभिक अवस्था में आयुर्वेदिक दवाइयों का प्रयोग किया जा सकता है, प्रोलेप्स-इन, कैटिल रिमेडीज अथवा प्रोलेप्स-क्योरद्ध इसके अतिरिक्त, होम्योपैथिक दवाई, सीपिया 200 की 10 बूदें रोजाना पिलाने से भी लाभ मिल सकता है।

• गंभीर स्थिति होने पर पशुचिकित्सक से सम्पर्क करें। पशुचिकित्सक इस स्थिति में दर्दनाशक व संवेदनाहरण, जाइलोकेन तथा सीक्विल आदिद्ध के टीका लगाते हैं। जिससे पशु जोर लगाना बंद कर देता है। अब बच्चा जनने से पहले फूल दिखाना शरीर के बाहर निकले हुए भाग को साफ कर तथा अंदर करके टीके लगा देते हैं। इसके बाद पशु को कैल्शियम की बोतल, आधी रक्त में तथा आधी त्वचा के नीचे लगा देते हैं। योनि के द्वार पर लगे टीकों को बच्चा देने के समय खोल दिया जाता है।

बच्चा जनने के दौरान :– बच्चा जनने के दौरान बच्चेदानी का बाहर आना सबसे अधिक खतरनाक माना जाता है। समय पर उपचार न होने के कारण पशु मर सकता है। बड़े आकार के अथवा विकृत बच्चे को जबरदस्ती जनन नलिका से बाहर खींचने के कारण अथवा ब्याने के बाद जेर को जबरन खींचने से भी बच्चेदानी के बाहर आने की सम्भावना बढ़ जाती है। इसमें पशु बैठी रहती है तथा गर्भाशय के लटके भाग पर लड्डू जैसी संरचनाएं स्पष्ट नजर आती है। इन पर जेर भी चिपकी हो सकती है। थोड़ा सा छेड़ने पर इनमें से खून भी निकलने लगता है। इसके इलाज के लिए पशुओं को अलग बांध कर रखें। गर्भाशय को लाल दवा युक्त ठण्डे/बर्फीले पानी से धोकर, एक गीले तौलिए से ढक दें ताकि गर्भाशय सूखने न पाये तथा उस पर मक्खियाँ न बैठें एवं भूसा व गोबर भी न चिपके। इसके बाद तुरन्त पशुचिकित्सक से सम्पर्क करें। पशुचिकित्सक गर्भाशय को साफ करके, जेर निकालकर गर्भाशय को उचित विधि द्वारा अंदर कर देते हैं तथा योनि पर टांकें लगा देते हैं ताकि गर्भाशय पुनः बाहर न निकले। इसके बाद पशु को कैल्शियम, ऑक्सिटोसिन व एंटीबायोटिक दवाइयाँ आवश्यकतानुसार लगाई जाती हैं।

बच्चा जनने के कुछ दिनों बाद :– बच्चा देने के कुछ दिनों बाद पाछा दिखाना मुख्य रुप से जनन नलिका में घाव या संमण के कारण होता है। प्रसूति के समय गलत तरीके से बच्चा निकालने से, अथवा गंदे हाथों से जेर निकालने से यह घाव व संमण हो जाता है। योनि से अक्सर बदबूदार मवाद निकलता है तथा पशु अक्सर पीछे की ओर जोर लगाती रहती है। उपचार के लिए तत्काल पशुचिकित्सक से सम्पर्क करना चाहिए। पशुचिकित्सक गर्भाशय व योनि को साफ करके उसमें एंटीबायोटिक गोलिया/द्रव रख देते हैं। संमण समाप्त होने तक इलाज करवाना चाहिए। पशु को 40-50 ग्राम कैल्शियम युक्त खनिज लवण मिश्रण नियमित रूप से खिलायें। गर्भाशय में बच्चा फंसने पर उसे जबरदस्ती अथवा गलत विधि द्वारा न निकालें/निकलवाएं। जेर निकलवाने के लिए अधिक जोर न लगाया जाए। शरीर के निकले भाग की सफाई का विशेष ध्यान रखें।

7 डेरी पशुओं के पाचन तथा भवसन सम्बन्धी रोग एवं उनका उपचार

बीमार पशुओं के लक्षण

पशुओं के बीमार होने के कारणों में पशुओं का गलत ढंग से पालन पोशण करना, पशु प्रबन्ध में ध्यान न देना, पशुपोशण में कमी या असन्तुलित भोजन देना, मौसम में बदलाव, जन्मजात बीमारियों का होना, दूषित पानी तथा अस्वच्छ एवं संक्रमित भोजन देना, पेट के कीड़ों का होना, जीवाणुओं का आक्रमण जैसे बैक्टीरिया, वायरस फंफूदी आदि। इसके अतिरिक्त अन्य कारकों में बाहरी चोट, घाव, अधिक सर्दी-गर्मी, रासायनिक पदार्थ, गन्दे स्थानों में पशुओं को रखना इत्यादि हैं।

स्वस्थ पशु की पहचान :-

1. सदैव सर्तक व वातावरण के प्रति सचेत रहता हैं।
2. चमड़ी प्रजाति के लक्षणें के अनुसार एवं चमकीली होती हैं।
3. पीठ को छूने से चमड़ी थरथराती हैं।
4. पशु अपने शरीर पर मक्खियां, कौवे आदि को बैठने नहीं देता हैं।
5. आंखें चमकीली एवं साफ (कोई घाव नहीं होता है) होती हैं।
6. स्वांस की गति सामान्य एवं लय में होती हैं।
7. गोबर, मूत्र का रंग सामान्य होता हैं एवं दुर्गन्ध रहित होता हैं।
8. नाक पर पानी की बूंदें जमा रहती हैं।
9. चारा सामान्य रूप से खाता है एवं जुगाली चबा-चबाकर करता हैं।
10. शरीर को छूने से तापमान में कोई परिवर्तन नहीं महसूस होता हैं।
11. थन व अयन सामान्य होते हैं तथा दूध का रंग व स्वाद में कोई परिवर्ततन नहीं होता हैं।

बीमार पशुओं की पहचान :-

पशु शरीर के अन्दर ऐसी नई चीजें देखने को मिलती हैं जो पशु पालकों को अपनी तरफ आकृष्ट करती हैं। ऐसे परिवर्तन भीतरी या बाहरी हो सकते हैं।

1. आकृति में परिवर्तन :-

- आंखों का अन्दर धंसना यह बताता है कि पशु की मृत्यु निकट हैं।
- त्वचा एवं शरीर का कड़ा होना, सिर का लम्बा होना तथा आंखों का सिकुड़ना टिटनेस रोग को बताता हैं।
- चिन्तित एवं शोकाकुल आकृति दर्द के समय होती हैं।
- सिर का झुकना, कानों का लटकना एवं पीड़ित आकृति-न्यूमोनिया की ओर इशारा करती हैं।

2. **शरीर की स्थिति** :-

- इस स्थिति से शरीर का पतलापन, दुर्बल या निर्बल होना रक्तहीन होना समझा जाता हैं।
- शरीर का पतला होना/दुर्बल होना - स्वास्थ्य में गिरावट।
- रक्तहीन होना - रक्त की कमी।

3. स्वभाव एवं आदतों में परिवर्तन :-

यह परिवर्तन छोटे बच्चों में ज्यादा दिखता है इनमें प्रमुख परिवर्तन खाने-पीने की आदतों, उठने एवं बैठने का तरीका इत्यादि होते हैं।

4. **स्थिति एवं ढंग** :-

- मिल्क फीवर में गर्दन को मोड़कर पेट की ओर रखना।
- पेट दर्द में सर को घुमाकर कोख की तरफ रखना।
- पेट दर्द में लगातार उठना, बैठना एवं जमीन पर लेटना।
- दिमागी बीमारिओं में चक्कर काटना, आवारा घूमना।
- फारेन बाडी सिन्ड्रोम में पशु कोहनी निकाल कर खड़ा होता हैं।
- न्यूमोनिया में पशुओं को अधिक देर तक खड़े रहना।

5. शारीरिक तापक्रम में परिवर्तन :-

- पशुओं का तापक्रम अवश्य देखना चाहिए।
- भीतरी ताप का अधिक होना बहुत से जीवाणुओं एवं विषाणुओं के रोगों में पड़ता है।
- निम्न ताप संक्रामक रोगों की दूसरी स्टेज या पुराने एवं क्षय रोग के अन्तिम चरण में मिलता हैं।

6. श्लेष्मा झिल्ली में परिवर्तन :-

- रक्तहीनता, पीलिया, अत्यधिक खून बहने वाले रोगों में झिल्ली पीली मिलती है।
- आंतों की सूजन में झिल्ली रक्तहीन हो जाती हैं।
- आंखों की बीमारियों, रक्तपूतित अवस्था में झिल्ली का रंग लाल हो जाता हैं।
- झिल्ली का नीला होना फेंफड़ों का पुराना रोग या जहर का होना बताता हैं।

1. गल घोंटू (एच0एस0) :-

यह एक जीवाणु जनित जानलेवा संक्रामक रोग हैं। इस रोग में गर्दन, गले तथा जबड़े में सूजन आ जाती है। आँखों का लाल होना तथा तीव्र बुखार 103-107°F होना सामान्य लक्षण हैं। उपरोक्त कारणों से सांस लेने में कठिनाई, व सांस में घुर्र-घुर्र की आवाज आती हैं। मुँह, नाक एवं मला-य की झिल्लियों में सूजन आना,

लगातार लार का टपकना, अन्य महत्वपूर्ण लक्षण हैं। संक्रमित पशु की 12 घंटे से 24 घंटे में मृत्यु हो जाती है। यह रोग अत्यधिक तीव्रता से फैलता हैं।

इस रोग का कारण पाश्चुरेला मल्टोसिड़ा नामक जीवाणु हैं जोकि सामान्यतः पशुओं की स्वास नलिका में उपस्थित रहता हैं तथा प्रतिकूल वातावरण एवं पशुओं की शरीरिक स्थिति में कमजोरी आने पर यह जीवाणु बढ़कर रोग उत्पन्न कर देते हैं। इस रोग का तत्काल उपचार होना नितान्त आवश्यक है। प्रथमतया उपचार के उपरान्त सुधार हो जाता हैं। यह उपचार पशुचिकित्सक की देखरेख में पूर्ण सुधार तक किया जाना चाहिये क्योंकि अपूर्ण उपचार की स्थिति में यह रोग पुनः प्रभावकारी हो जाता हैं तथा हृदय की मांसपेशियों में जीवाणु के कारण चिकित्सा प्रभावकारी नहीं होती हैं। प्रत्येक परिस्थिति में उपचार कीमती, समय लेने वाला तथा अनिश्चित होता हैं। अतः टीकाकरण करना आवश्यक व प्रभावी हैं। गलघोंटू के दो प्रकार के टीके उपलब्ध हैं।

एच0एस0 टीका प्रतिवर्ष मानसून सत्र से पहले तथा सर्वप्रथम 6 माह की उम्र पर किया जाता है। प्रथम प्रकार के टीके की रोग प्रतिरोधक क्षमता 4-6 माह के लिये तथा द्वितीय प्रकार की 9 माह-12 माह के मध्य होती हैं जिसके अनुरूप इन टीकों का प्रयोग वर्श में दो बार किया जाता हैं। टीकारण 6 माह की आयु से प्रारम्भ करना होता हैं। वर्तमान में गलाघोटू का टीका लगड़ी तथा खुरपका व मुँहपका के साथ सम्मिलित रूप से भी उपलब्ध हैं। प्रथम प्रकार का टीका 5-10 एम.एल. की मात्रा में खाल के अन्दर तथा द्वितीय प्रकार का 1-3 एम.एल. मांस में गहराई पर लगाना होता हैं। गाभिन पशुओं में द्वितीय प्रकार के टीके का प्रयोग करना अधिक उचित होता हैं।

2 बूसिलोसिस (संक्रामक गर्भपात) :-

यह एक संक्रामक रोग हैं। जिसमें बांझपन एवं गर्भपात की सम्भावना रहती हैं। गर्भकाल के अंतिम तीन माह के दौरान गर्भपात होता हैं तथा गर्भपात के पश्चात जेर भी रूक जाता हैं जिसके सड़ने की संभावना रहती हैं। कभी-कभी पशु की मृत्यु भी हो सकती हैं। इन लक्षणों के अतिरिक्त कुछ पशुओं में जोड़ों की सूजन भी हो जाती हैं। यह एक जूनोटिक रोग है जो कि रोगी पशु का कच्चा दूध पीने से, उसके विभिन्न स्रावों तथा गर्भपात के दौरान रोग के कीटाणु मनुष्यों के शरीर में जा सकते हैं और अन्डूलेटिंग फीवर उत्पन्न करते हैं। गर्भपात के साथ रोगी पशु से भारी मात्रा में कीटाणु बाहर आते हैं जिनसे अन्य पशु भी संक्रमित हो सकते हैं। सामन्यतः प्रथम बार संक्रमित पशु प्रथम गर्भकाल के दौरान ही गर्भपात करते हैं। उसके उपरान्त प्रजनन का कार्य समान्य रूप से होता हैं, परन्तु पशु अपने विभिन्न स्रावों से जीवाणुओं का उर्त्सजन करते रहते हैं जिनसे रोग के फैलने की सम्भावना सदा बनी रहती हैं। अतः संक्रमण को रोकने के लिए रोगी पशु को स्वस्थ पशुओं के साथ नहीं रखना चाहिये तथा गर्भपात के स्थान पर उचित प्रकार से विसंक्रमण किया जाना आवश्यक हैं। गिरे हुयें जेर आदि को चूने के साथ गड्डे में दबाना चाहिये। इस रोग का कोई भी असरदार उपचार संम्भव नहीं है। 4-8 माह की बछियों को काटन स्ट्रेन 19 का टीकाकरण कराना चाहिये। यह टीका जीवन में एक बार ही लगाना होता हैं जोकि सिर्फ बछियों को लगवाया जाता हैं।

3 मेस्टाईटिस (थनैला) :–

दूध देने वाले पशु के अयन एवं थन की सूजन तथा दूध की रासायनिक संरचना में अंतर आ जाता हैं। इस रोग में दुग्ध उत्पादन में कमी आ जाती हैं जिससे भारी आर्थिक हानि होती हैं। थनैला रोग कई प्रकार के जीवाणुओं के संक्रमण से होता हैं। इसमें अयन में सूजन, गरम होना, तथा हल्के लाल रंग का हो जाना इस रोग का प्रमुख लक्षण हैं। बीमार पशु के दूध का उपयोग करने से मनुष्यों में भी कई प्रकार के संक्रमण हो सकते हैं। सामान्यतया यह छुआछूत की बीमारी नहीं हैं परन्तु कई जीवाणुओं से प्रसार से अन्य पशु भी इस रोग से ग्रसित हो सकते हैं। कई बार में थन एवं अयन पर छाले हो जाते हैं एवं उनमें घाव भी हो सकते हैं। यह रोग कई अनेक प्रकार के जीवाणुओं द्वारा होता हैं। अतः उपचार से पूर्व थन एवं अन्यन की जाँच आवश्यक हैं तथा दवा का प्रयोग जाँच के उपरान्त ही करना चाहिये। एन्टीवायोटिक इन्जेक्शन तथा सूजन कम करने वाली दवाओं का प्रयोग किया जाना चाहिये। दवा को सीधे थन के मार्ग से अयन में मल्हम के रूप में प्रयोग अधिक प्रभावी होता हैं। थनों को पोटेशियम परमेंगनेट के घोल से विसंक्रमित करना चाहिये। इसके साथ ही थन या अयन के ऊपर किसी भी प्रकार के गरम तेल, घी आदि की मालिश नहीं करनी चाहिये। बीमारी की अवस्था में सूजन कम करने के लिये थन के ऊपर बर्फ की सिकाई भी करनी चाहिये। यह रोग बहुत तेजी से बढ़ता हैं अतः दूध के रंग, मात्रा, स्वाद के साथ-साथ थनों एवं अयन में होने वाले किसी भी परिवर्तन की स्थिति में यथा शीघ्र पशुचिकित्सक से परामर्श कर उपचार प्रारम्भ कर देना चाहिये। परन्तु, रोग के बहुआयमी कारणों के कारण सतप्रतिशत सफलता प्राप्त करना असंम्भव हैं।

पशुओं में थनैला रोग की उपचार एवं रोकथाम –:

- बीमार पशु के थन एवं अयन की सफाई करें।
- थनैला का संदेह होने पर तुरन्त जाँच करवायें।
- थन/अयन की कभी भी गर्म सिकाई न करें।
- दूध दुहने पर पहले एवं बाद में किसी एंटीसेप्टिक (लाल दवा) के पानी से सफाई करें।
- दूध निकालते समय थन पर दूध के स्थान पर घी की मालिश करें।
- थनों को बाहरी चोट से बचायें।
- पशुघर को सूखा रखें।
- समय-समय पर चूने का छिड़काव करें एवं मक्खियों पर नियंत्रण रखें।
- बीमारी होने पर शीध्रताशीध्र/तुरन्त कुशल पशु चिकित्सक से उपचार करवायें।
- संक्रमिक पशुओं का दूध दुहने के बाद अन्य पशु का दूध दुहने से पहले अपने हाथों एवं बर्तनों का भली भाँति साफ कर लें।

- दूध छूटने के बाद थन नली कुछ देर तक खुली रहती है और इस समय पशु के बैठने से रोग के जीवाणु थन नली में प्रवेश कर बीमारी फैलाते हैं। अतः दूध दुहने के तुरंत बाद दुधारू पशुओं को पशु आहार दें व पिने के लिए साफ पानी जिससे कि वे कम से कम आधा घंटा न बैठं।

4 खुरपका, मुँहपका (एफ.एम.डी.)

खुरपका मुँहपका छूत की बीमारी हैं। यह रोग सम्पर्क, दाना, चारा पानी एवं हवा से फैलने वाला तीव्र प्रकार का रोग हैं। इस रोग में मृत्युदर कम होती है, परन्तु यह बीमारी ज्यादा से ज्यादा पशुओं को चपेट में लेने वाली बीमारी हैं। इस रोग में तेज बुखार 103-107°F, मुँह में मसूड़े एवं जीभ पर छाले, लगातार लार का गिरना, खुरों में छाले जिनके फूटने से घाव बनना एवं संक्रमण होने से मवाद पड़ना प्रमुख लक्षण हैं।

इस रोग की रोकथाम के लिए लाल दवा पोटेशियम परमेंगनेट अथवा फिटकरी के घोल से मुँह एवं पैरो के छालों को साफ करें। ज्वर हेतु ज्वर उतारने वाली दवा का उपयोग करें एवं एन्टीवायोटिक दवा दें। कुशल पशुचिकित्साधिकारी से उपचार करावें।

रोग से बचाव के लिए एफ.एम.डी. का टीका 3 माह की उम्र में दिया जा सकता है दूसरा टीका 6 माह बाद एवं उसके पश्चात प्रतिवर्श देना आवश्यक हैं। वर्श में दो बार टीकाकरण करना अत्यन्त प्रभावकारी होता हैं।

5 रेबीज

यह शतप्रतिशत जानलेवा रोग हैं जो किसी सक्रंमित पशु के काटने से फैलता हैं। एक बार लक्षण दिखने के बाद मृत्यु निश्चित है। इस रोग में दो प्रकार के लक्षण दिखाई देते हैं। मूक रूप (लकवा) में पशु का निचला जबड़ा लटक जाता हैं। मुख खुला रहता हैं और लार टपकती रहती हैं। मृत्यु दो या तीन दिन में हो जाती हैं। द्वितीय रूप रौद्र या प्रचंड़ रूप हैं जिसमें पशु चिड़चिड़ा हो जाता है तथा अन्य पशुओं एवं मनुष्यों को काटने की इच्छा रखता हैं। जिस स्थान पर पागल कुत्ते/ पशु ने काटा हो वहाँ अच्छी प्रकार से खून को निकाल कर पोटास के पानी से साफ करें तथा कार्बोलिक एसिड़ से दाग दें एवं यथा शीघ्र पागलपन की रोकथाम हेतु टीका लगवायें।

रेबीज का टीकाकरण दो प्रकार से किया जाता हैं। संक्रमित पशु के काटने से पूर्व तथा काटने के बाद। सामान्य स्थिति में टीकाकरण हेतु एक बार टीकाकरण वर्ष पर्यन्त प्रभावकारी होता हैं। परन्तु इस अवधि में संक्रमण होने तथा काटे जाने पर एक बार बूस्टर टीका लगवाना पर्याप्त होता हैं। संक्रमण के उपरान्त 6 टीके लगाये जाते है जो कि 0, 3, 7, 14, 30, 90, दिवस के समय पर लगाये जाते हैं जिसमें प्रथम टीका काटने के तुरन्त बाद लगाना आवश्यक हैं। रोग से बचाव के लिए उचित जैव सुरक्षा उपाय एवं एन्टीरेबीज वैक्सीन लगवाएँ।

6 अपच

बदले हुए मौसमों में चारे तथा अन्य घासों की उपलब्धि एवं उनके प्रकार पर अपच का होना निर्भर हैं। यदि अधिक अम्लीय व अधिक क्षारीय गुण वाले चारे खिलायें जायें तो अपच हो जाता हैं। कभी-कभी बिना अम्लीय व क्षारीय गुण वाले चारे भी अपच कर देते हैं। पूरा का पूरा सूखा चारा जैसे-कर्वी, पुआल (धान का भूसा), गेंहू का भूसा इत्यादि खिलानें से जबकि हरा चारा उपलब्ध नही हो पाता तो क्षारीय अपच हो जाया करता हैं। इसके विपरीत यदि हरा चारा ही पूरी तौर पर खिलाया जाये तो भी अम्लीय अपच हो जाता हैं जैसे- हरा चारा, साइलेज, हरे दाने, बरसीम इत्यादि, अधिक खिलाने से अपच पैदा करते है। अधिक चारा खिलाने में चाहे अम्लीय या क्षारीय स्थिति भी न पैदा करते हो तो भी अपच हो जाता है। अपर्याप्त तथा त्रुटि पूर्ण आहार एवं एन्टीबायोटिक भी रूमेन (पशु के प्रथम पेट) के कार्य को अवरूद्ध करके अपच की स्थिति उत्पन्न कर देते हैं।

लक्षण :-पशु खाना छोड़ देता हैं, जुगाली भी बन्द हो जाती है, यद्यपि ज्वर नही होता।

उपचार

- यदि पेट में कृमि हो तो कृमि नाशक औषधियां देकर उसे नष्ट करें।
- पशु को 24-48 घंटे भूखा रख कर हल्के चारे, जैसे हरी घास, चोकर आदि नियमित समय पर दें।
- पशु को नियमित रुप से व्यायाम करायें।
- पशु को मैगसल्फ 250 ग्राम, सोडियम क्लोराइड (नमक) 180 ग्राम ,सोठ का चूर्ण 30 ग्राम, शीरा 1/2 किलो पानी आवश्यकता अनुसार।
- साथ ही हिमालय बत्तीसा/डाईजेस्टोन अथवा जैमो पाचक चूर्ण 30-50 ग्राम की मात्रा में दिन में दो तीन बार देते रहें।

7 इम्पैक्शन (पेट का ठस्स हो जाना)

आहार तथा अन्य कडे चारों को अत्याधिक मात्रा में खा लोने से रूमेन में उठने वाली लहर बन्द हो जाती हैं तथा शेष 3 पेटों की कार्यक्षमता भी बन्द हो जाती है। एकदम चारा बदल देने से भी जैसे हरे चारे से ''हे'' पर तथा मात्र भूसे पर ही आधारित होना, कमजोरी व पानी का न पिलाना तथा काफी दिनों की गर्भावस्था व दूसरे ऐसे कारण हैं, जिनसें उपरोक्त रोग हो जाता हैं।

लक्षण :-भूख का बन्द हो जाना, जुगाली बन्द हो जाना, अंतड़ियों में गोबर का जम जाना तथा जोर लगाने पर भी बाहर न निकलना इत्यादि।

उपचार

- पशु के बायी पेट की मालिस।
- रूमिण्टोन/रूमवियोन/बोवेरान आदि 2-2 टिकिया तीन दिनों तक।
- इन्जेक्शन लिवरजेट/लिवीप्लेक्स/लिवोबेक्स 5 -10 मिली0 मास में दो दिन तक।
- इन्जेक्शन बी1, बी2, बी12 (न्योराक्यान बीट/या ट्राई रेडीसोल - एन्प 1000 उह 10 मिली0 मास में।
- डेक्स्ट्रोन सैलाइन 5/, 2-5 लीटर आई वी मार्ग से दें।
- सैलाइन परगेटिव यथा मैग सल्क 20ग्राम , सोंठ पाउडर 30 ग्राम गर्म पानी। लिस्टलीटर मिलाकर पिलावें।

8 दस्त

बार-बार पतली पानी जैसी पिचकारीवत् गोबर का आना (शौच) दस्तों के लक्षण हैं। त्रुटि पूर्ण आहार, फफूंद लगे आहार तथा एकदम आहार में परिवर्तन व भौतिक दशा का परिवेश में अन्तर तथा परजीवी जीवाणु व विशाणुओं से उत्पन्न रोगों में अक्सर दस्त हो जाते हैं।

लक्षण :- पशु आहार खाना छोडकर एकदम सुस्त हो जाता हैं, पिछले पैर शौच में सन जाते हैं। पानी की कमी के कारण पशु की आँखें गड्ढों में धंस जाती हैं तथा गम्भीर दशा में शरीर का तापमान भी कम हो जाता हैं तथा शरीर भार में कमी आ जाती हैं।

उपचार

- कैस्टर आयल या अलसी का तेल 500 ग्राम बडे पशुओं में।
- सल्फाग्वानेडीन 20-30 छोटी टिकिया अथवा 5 ग्राम की बडी टिकिया 4 से 6 दें। बाद में इसकी मात्रा आधी कर दें।
- कोट्रीमोक्साजोल बडें पशुओं को 2-3 बोतल दिन में दो बार दें।
- फुराजोलीडन एवं सल्फाड्रग्स की बोतल बडे पशुओं को 4-5 दें।
- डायरेक्स की 15-20 गोली या पेसुलीन की 4-8 बोतल दिन में दो बार।
- एमैक्सीसिलीन पाउडर बछडें को 5 ग्राम पीने के पानी में 3-5 दिनों तक

8 'साइलेज' एवं 'हे' बनाना

सघन फसल चक्र में चारें की फसलें उगाने के बावजूद साल में दो बार हरे चारे की कमी के अवसर आते हैं। मानसून शुरू होने से पूर्व मई-जून तथा मानसून खतम होने के बाद अक्तूबर-नवम्बर में हरे चारे की कमी होती हैं। दूसरी ओर सिंचिंत क्षेत्रों में फरवरी-मार्च एवं अगस्त-सितम्बर महीनो के दौरान हरा चारा जरूरत से ज्यादा हो जाता हैं। इस फालतु हरे चारे का उपयोग 'साईलेज' बनाकर कमी वाले महीनों में किया जा सकता हैं। अधिकतर किसान भूंसा या पुआल का उपयोग करते हैं जो 'साईलेज' या 'हे' की तुलना में बहुत घटिया होते हैं। क्योंकि भूसा या पुआल में प्रोटीन, खनिज तत्व एवं उर्जा की उपलब्धता कम होती हैं।

साईलेज

हरे चारे को हवा की अनुपस्थिति में गडढे के अन्दर रसदार परिरक्षित अवस्था में रखनें से चारे में लैक्टिक अम्ल बनता हैं जो हरे चारे का पी.एच. कम कर देता हैं तथा हरे चारे को सुरक्षित रखता हैं। इस सुरक्षित हरे चारे को 'साईलेज' कहते हैं ।

1. 'साईलेज' बनाने के लिए फसलो का चुनाव

दाने वाली फसलें जैसे मक्का, ज्वार, जई, बाजरा आदि 'साईलेज' बनाने के लिए उत्तम फसलें हैं क्योंकि इनमें कार्बोहाइड्रेट की मात्रा अधिक होती हैं। कार्बोहाइड्रेट की अधिकता से दबे चारे में किण्वन क्रिया तीव्र होती हैं। दलहनीय फसलों का 'साइलेज' अच्छा नहीं रहता परन्तु दलहनीय फसलों को दाने वाली फसलों के साथ मिलाकर 'साईलेज' बनाया जा सकता हैं। अन्यथा शीरा या गुड़ के घोल का उपयोग किया जाए जिससे लैक्टिक अम्ल की मात्रा बढाई जा सकती हैं।

2. 'साईलेज' बनाने के लिए फसल के कटाई की अवस्था

दाने वाली फसलों जैसे कि मक्का, ज्वार, जई आदि को 'साईलेज' बनाने के लिए जब दाने दूधिया अवस्था हो तो काटना चाहिए। इस समय चारे में 65-70 प्रतिशत पानी रहता हैं। अगर पानी की मात्रा अधिक हैं तो चारे को थोड़ा सुखा लेना चाहिए।

3. 'साईलेज' के गड्ढो के लिए जगह का चुनाव

'साईलेज' बनाने के लिए गड्ढो के लिए जगह का चुनाव बहुत महत्वपुर्ण हैं।

1. गड्ढे हमेशा उँचे स्थान पर बनाने चाहिए जहां से वर्शा के पानी का निकास अच्छी तरह हो सके ।
2. भूमि में पानी का स्तर नीचे हो ।
3. 'साईलेज' बनाने का स्थान पशुशाला के नजदीक हो।

4. गड्ढे बनाना

'साईलेज' बनाने के लिए गड्ढे कई प्रकार के होते हैं। गाँवों में साईलेज बनाने के लिए खत्तियॉं काफी सुविधाजनक और उपयोगी होती हैं। गड्ढो का आकार उपलब्ध चारे व पशुओं की संख्या पर निर्भर करता हैं। गड्ढों के धरातल में ईंटों से तथा चारों ओर सीमेंट एवं ईंटो से भली भांति भराई कर देनी चाहिए जहाँ ऐसा सम्भव न हो सके वहाँ पर चारों ओर तथा धरातल की गीली मिटटी से खुब लिपाई कर देनी चाहिए। और इनके साथ सूखे चारा की एक तह लगा देनी चाहिए या चारों और दीवारों के साथ पोलीथीन लगा दें ।

5. गड्ढो को भरना तथा बन्द करना

जिस चारे का 'साईलेज' बनाना हैं उसे काट कर थोड़ी देर के लिए खेत में सुखाने के लिए छोड़ देना चाहिए। जब चारे में नमी 70 प्रतिशत के लगभग रह जाये, उसे कुट्टी काटने वाली मशीन से छोटे-छोटे टुकड़ों में काट कर गड्ढों में अच्छी तरह दबाकर भर देना चाहिए। छोटे गड्ढों को आदमी पैरो से दबा सकते हैं जबकि बडे गड्ढे ट्रैकटर चलाकर दबा देने चाहिए। जब तक जमीन की तह से लगभग एक मीटर उचाँ ढेर न लग जाये भराई करते रहना चाहिए। भराई के बाद उपर से गुम्बदाकार बना दें और पोलिथीन या सूखे घास से ढक कर मिट्टी अच्छी तरह दबा दें और उपर से लिपाई कर दें ताकि इस में बाहर से पानी तथा वायु आदि न जा सकें।

6. गड्ढो का खोलना

गड्ढे भरने के तीन महीने बाद गड्ढों को खोलना चाहिए। खोलते समय ध्यान रखें कि 'साईलेज' एक तरफ से परतों में निकाला जाए और गडढे का कुछ हिस्सा ही खोला जाए तथा बाद में उसे ढक दें। गडढा खोलने के बाद 'साईलेज' को जितना जल्दी हो सके पशुओं को खिलाकर समाप्त करना चाहिए। गड्ढे के उपरी भागों और दीवारों के पास में कुछ फफूंदी लग जाती हैं। यह ध्यान में रखें कि ऐसा 'साईलेज' पशुओं को नहीं खिलाना चाहिए ।

7. पशुओं को 'साईलेज' खिलाना

सभी प्रकार के पशुओं को 'साईलेज' खिलाया जा सकता हैं। एक भाग सूखा चारा, एक भाग 'साईलेज' मिलाकर खिलाना चाहिए। यदि हरे चारे की कमी हो तो 'साईलेज' की मात्रा ज्यादा की जा सकती हैं। 'साईलेज' बनाने के 30-35 दिन बाद 'साईलेज' खिलाया जा सकता हैं। एक सामान्य पशु को 20-25 किलोग्राम 'साईलेज' प्रतिदिन खिलाया जा सकता है। दुधारू पशुओं को 'साईलेज' दूध निकालने के बाद खिलायें ताकि दूध में 'साईलेज' की गन्ध न आ सके। यह देखा गया है कि बढिया 'साईलेज' में 85-90 प्रतिशत हरे चारे के बराबर पोषक तत्व होते हैं। इसलिए चारे की कमी के समय 'साईलेज' खिंलाकर पशुओं का दूध उत्पादन बढ़ाया जा सकता हैं।

'हे' बनाना

सूखे चारे को संरक्षित करने की सबसे पुरानी एवं सरल पद्धति है। यह प्रक्रिया साल भर जानवरो को सूखा चारा प्रदान करती है। 'हे' बनाने का मुख्य उददेश्य चारे के पोषक तत्वों, स्वाद एवं खरपतवार रहित करके पत्तियों सहित संरक्षित करना हैं। जो गोचर के अभाव एवं गैर चराई की मौसम में चारा उपलब्ध कराता है। 'हे' बनाने के लिए चारे की कटाई फूल आने के पहले जब नमी की मात्रा अधिक हो, करना चाहिए। ऐसा करने से पोषक मूल्य तो अधिक होता है बल्कि अधिक उत्पादन एवं संरक्षण भी आसान हो जाता हैं। फूल आने के बाद चारे को काटने से उत्पादन अधिक मिल सकता हैं लेकिन उसका पोषक मूल्य घट जाता हैं। 'हे' उचित समय पर बनाने से पशुधन को अधिक पोषक तत्वों की मात्रा एवं पाचन योग्य सूखे चारे का प्रतिशत भी बढ़ जाता हैं। अधिक नमी वाले चारे को भी संरक्षण में कठिनाई होती हैं इसलिए हरे चारे को अच्छी तरह से सुखाकर संरक्षित करने से भूसा की तुलना में पशुओं को अधिक पोषण मिलता हैं। 'हे' बनाने की विधि कई कारकों पर निर्भर करती हैं।

1. उपलब्ध चारे का प्रकार
2. फसल परिपक्वता की स्थिति
3. उपलब्ध चारे की मात्रा
4. यातायात व्यवस्था
5. किसान का सामाजिक व आर्थिक स्तर

उपरोक्त कारकों के आधार पर 'हे' तीन विधियों से बनाई जा सकती हैं।

(अ) जंगली 'हे'

(ब) सूर्य की धूप में सुखाना : पशु पालक जंगलो से सुखी घास एवं पेड़ो का पत्तियो को एकत्रीत कर लेते है और चारे कि कमी के समय में पशुओं को खिलाते है।

(स) कृत्रिम तरीके से सुखाना : पशु पालक चरागाह से बर्शात के दिनों में हरी घास को काटकर घर पर ले आते है। इस घास को सुर्य के प्रकाश में सुखते रहते है। जब घास पुर्णत सूख जाती है तो ढेरी बनाकर एक उचित स्थान पर भंडारण कर लेते है।

संस्थान द्वारा कृत्रिम तरीके से चारा सुखाने का यंत्र विकसित किया गया हैं। जो प्राकृतिक रूप से चारे को सुखाता हैं। इस प्रक्रिया में चारे को भारी हवा दबाव एवं कृत्रिम गर्मी/प्रकाश की उपस्थिति में सुखाया जाता हैं। इस यंत्र में एक ब्लोअर/पंखा लगा होता हैं जो पांच हार्सपावर की मोटर से चलाया जाता हैं। इसमें बी-आकार के 10 कुन्टल का एक कंटेनर होता हैं जिसमें चारे को सात दिन तक सुखाया जाता हैं। इस प्रक्रिया

में गरम हवा के लिए गोबर गैस/वायोगैस या हीटर का प्रयोग होता हैं। हीटर या वायोगैस को चारे एवं ब्लोयर के बीच में रखा जाता हैं।

चारे की गोली बनाना

कृत्रिम रूप से सूखे चारे का आयतन अधिक होने से यातायात, संरक्षण एवं खिलाने की कठिनाई को दूर करने के लिए एक पद्धति विकसित की गई हैं। जिसको दबाव देकर बेल्स, पेलेट या कोव बनाने की प्रक्रिया में कटे हुए चारे को चक्की में डालकर गोली बना दी जाती हैं। गोली की सघनता के आधार पर जानवर कम या अधिक खाना पसन्द करते हैं। यदि सघनता एक ग्राम प्रति क्यूविक से.मी. हैं तब गोली हार्ड बनेगी जिसको वयस्क जानवर खाना कम पसन्द करते हैं इसलिए गोली बनाते समय सघनता एवं धूल को ध्यान में रखना चाहिए।

सूखे चारे का यूरिया द्वारा उपचार

4 किलो यूरिया का 50 लीटर पानी में घोल बनाकर एक क्विंटल चारे, भूसा या पुआल की तह, जो तीन चार मीटर की गोलाई पर बिछाई जाती हैं पर फौवारे से छिड़काव किया जाता हैं। चारे को पैरों से अच्छी तरह से दबाकर इस पर दूसरी तह डाली जाती हैं और इसी प्रकार तह पर तह डालकर 25 क्विंटल की ढेरी बनाई जाती हैं। इसको फिर पोलीथीन की शीट से अच्छी तरही ढ़क दिया जाता हैं। तीन सप्ताह तक इस उपचारित ढ़ेरी को ऐसे ही रखा जाता हैं। इस दौरान इसके अन्दर अमोनिया गैस बनती हैं जो घटिया चारे को अधिक पौष्टिक व अधिक पचने वाला बना देती हैं। इसके पश्चात् यह चारा पशुओं को खिलाने के लिए तैयार होता हैं। इससे या तो अकेले या फिर हरे चारे के साथ मिलाकर सानी करके खिलाया जाता हैं।

यूरिया उपचार से ढेरी के अन्दर अमोनिया गैस पैदा होती हैं। धीरे-धीरे अमोनिया चारे के रेशे में प्रवेश करती हैं तथा पाचक तत्वों को लिग्निन के कब्जे से मुक्त कर लेती हैं। इस प्रकार से चारे की पाचक शक्ति बढ़ जाती हैं। अमोनिया रेशे के साथ चिपका होने के कारण पशुओं के लिए अधिक लाभदायक होता हैं। यह अमोनिया रूमन (गाय भैंस के पेट का सबसे बड़ा हिस्सा) में पाये जाने वाले जीवाणु के द्वारा प्रोटीन में बदल दिया जाता हैं। बची हुई अमोनिया गैस काफी हद तक उड़कर बाहर निकल जाती हैं।

सावधानियां

1. उपचार के लिए फफूंदी रहित चारा ही प्रयोग में लाना चाहिए। अतः सूखी पुआल ही उपचार के लिए प्रयोग करनी चाहिए।
2. यूरिया के घोल के लिए पानी बिल्कुल साफ और सही मात्रा में डालना चाहिए।
3. यूरिया का घोल चारे के ऊपर बराबर-बराबर छिड़कना चाहिए।
4. ढ़ेरी बनाते समय चारे की हर तह को पैरों से अच्छी तरह से दबाना चाहिए।

5. ढ़ेरी को पोलीथीन से या सूखे चारे से अच्छी तरह से ढ़कना चाहिए।

उपचारित चारे के लाभ

1. उपचारित चारा गर्म होने के कारण पशु खूब चाव से खाते हैं।
2. पांच या छः किलो उपचारित पुआल खिलाने से अधिक क्षमता रखने वाले दुधारू पशुओं में आधा किलो से एक किलो तक दूध में वृद्धि हो सकती हैं।
3. अगर दाने में 0.25-0.5 किलो की कटौती भी की जाए तो भी दूध की मात्रा में कमी नहीं आती।
4. बछड़े-बछड़ियों तथा कटड़े-कटड़ियों को उपचारित चारा खिलाने से वज़न भी तेजी से बढ़ता हैं तथा पशु काफी स्वस्थ दिखते हैं।
5. चूंकि उपचारित चारा पशुओं को स्वादिष्ट लगता हैं इसलिए पशु चारा बाकी नहीं छोड़ते इस तरह से चारा खराब नहीं होता।
6. चारा नर्म होने के कारण काटने में भी कुट्टी बनाते समय आसानी रहती हैं।

इस विधि का प्रयोग उन पशुपालकों को करना चाहिये जिनके पास हरे चारे की कमी हैं और सूखा चारा कुछ सस्ता हैं।